आजकल

सितम्बर 1991

तीन रुपये



नौ कविताएं

मैं

गंभीर सिंह पालनी

अखबार के किसी कोने में मौजूद
नन्हा समाचार हूं मैं
जिसमें
तुम्हारे गुम हो जाने की
खबर है।

* * *

मैं वह किताब हूं
जिसके प्रारंभिक कई पृष्ठ
फाड़कर रख लिए हैं तुमने
अपने पास मगर फिर भी जो
सेल्फ में रखी हुई है।

* * *

वह किताब हूं मैं
जो किताबों की आलमारी के पीछे
गिर गई है तुमसे
और उस पर धूल की परतें
जमती चली गई हैं।

* * *

मैं वह डायरी हूं
जिसके पहले पृष्ठ पर
अपना नाम लिखकर
भुला बैठी हो तुम
और उसके बाकी पृष्ठ
कोरे रह गए हैं।

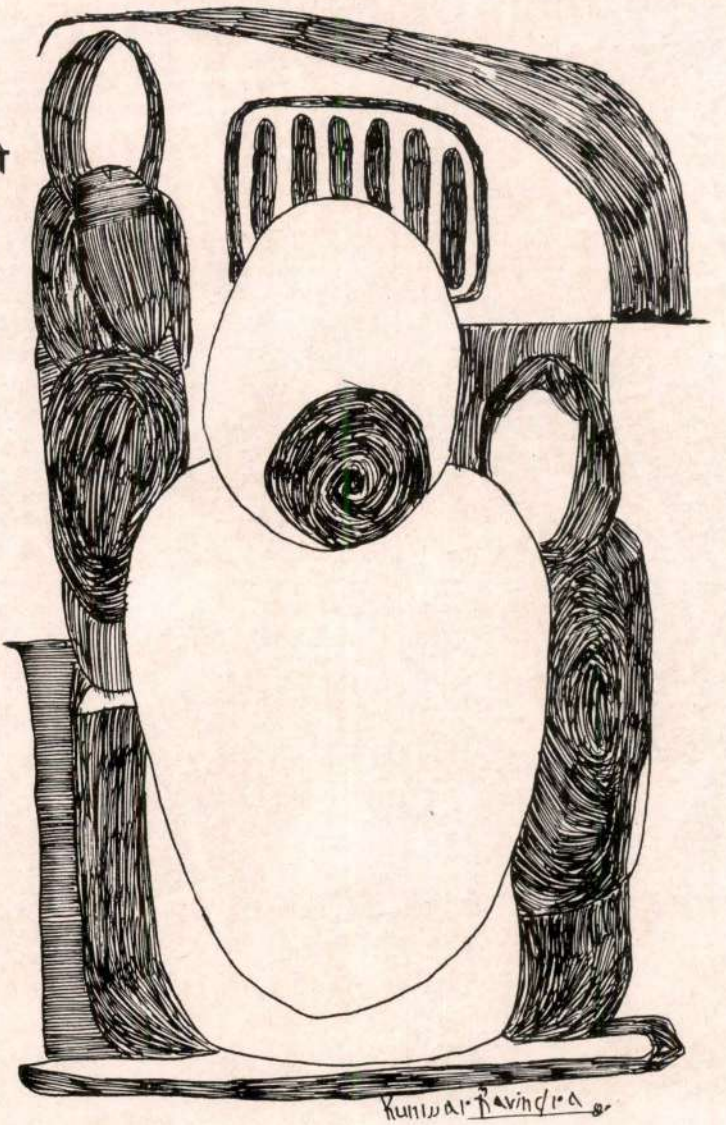
* * *

वह तितली हूं मैं
जिसे यूं ही पकड़ कर
रख छोड़ा था तुमने
अपनी डायरी में
और डायरी तो
हर साल
बदल जाया करती है।

* * *

मैं बेड़ा हूं
झील के किनारे
आधा डूबा हुआ;
कभी तुम मुझ में होती थीं
और मैं तुम में।

* * *



शहर के बीचों बीच ठहरी
झील में
उतराती
निकल आई है
एक लाश आज फिर
मैं उसके करीब जाकर
करता हूं कोशिश
पहचानने की
कि कहीं वह
मैं ही तो नहीं।

* * *

मैं वह कैलेंडर हूं
जिसे टांका था कभी तुमने
घर की दीवार पर
और हर रोज
टकटकी बांधे देखती थीं तुम
मेरी तरफ।

अब एक नया रंगीन कैलेंडर
टंका है तुम्हारे घर में।
मैं अब भी
टकटकी बांधे देखता हूं
तुम्हारी तरफ,
भले ही तुम
मुझे टांक कर
भूल गई हो।

* * *

वह मयूरपंख हूं मैं
जिसे
भूल जाने के लिए
रख छोड़ा था तुमने
जिन्दगी की मोटी किताब में। □

द्वारा नैनीताल बैंक लिमिटेड
बाजपुर, (नैनीताल)



आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

वर्ष : 47; अंक : 5; पूर्णांक : 565;
सितम्बर : 1991 (भाद्रपद-आश्विन, 1913)

सम्पादक
सुरेश चन्द्र शर्मा

सहायक सम्पादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-सम्पादक
विजय कुमार

व्यापार व्यवस्थापक
: **जसवंत सिंह**
सहायक व्यापार व्यवस्थापक
: **शकुन्तला**
आवरण सज्जा
: **आशा सक्सेना**

रचना-क्रम

2. **प्रतिक्रियाएं**

3. **सम्पादकीय** : एक बहुमुखी व्यक्तित्व

लेख :

5. राष्ट्रभाषा हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ — **डा. वासुदेव**
7. विवादास्पद कहानीकार सआदत हसन मंटो — **डा. गुरचरण सिंह**
11. हथेली पर सूखती भांग की पत्तियां — **डा. बलदेव वंशी**
14. अपना कंधा अपनी लाश — **दिलीप सिंह**
25. घर का जोगी जोगना आन गांव का सिद्ध — **डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी**
27. प्रवासी हिन्दी साहित्य के समर्पित साधक — **डा. वीरेन्द्र शर्मा**
31. कालियदह की कहानी : सूर-नर सिंह की जुबानी — **रवीन्द्र अन्धारिया**
36. समकालीन आलोचना — **डा. सूरज पालीवाल**
38. परिवर्तन की बाट जोहते बैगा आदिवासी — **एस. अहमद**

कहानियां :

17. आत्मकथा — **मुश्ताक मोमिन**
29. अकेली — **जी. कमलाधरन**
33. योगदान — **धर्मपाल**
40. अच्छा घर (लघु कथा) — **अशोक भाटिया**

20. **कविताएं :**
हेमन्त कुकरेती, स्वराज्य 'शुचि', योगेन्द्र दत्त शर्मा, राजेन्द्र गौतम, सरला गुप्ता, मधुर नज्मी, सुषमा प्रेम, नारायण लाल परमार, गंभीर सिंह पालनी (आवरण पृष्ठ 2 पर)।

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन और रंगमंच आदि नियमित स्तंभ।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'आजकल' (हिन्दी), प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 387069

प्रतिक्रियाएं

आजकल का जून का अंक मिला। देखा, संतुष्ट हुआ। हिन्दी गजल पर विवेचना सशक्त अभिव्यक्ति लगी। डा. हरिमोहन ने हिन्दी गजल के इतिहास का भी पुनरावलोकन करवाया है। 'समकालीन मलयालम नाटक' पर प्रस्तुत लेख मलयालम नाटक की स्थिति को उजागर करता है। लेख में नाटककारों के व्यक्त विचार मलयालम नाटक के इतिहास और आधुनिक स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। लेख में एन. एन. पिल्लै का नाटक और रंगमंच के प्रति विचारवान होना और सजग होना प्रतीत होता है। मधुर शास्त्री की कविता 'एक पल मिले सुरक्षित' सशक्त अभिव्यक्त लगी। कविता यथार्थ की जमीन से जुड़ी है। अशांत भोला सिंह की कविता अच्छी रही। डा. ए. अरविन्दाक्षन ने कौओं के माध्यम से व्यंग्य प्रस्तुत किया है। □

श्रीनाथ सिंह, भीमनगर, टी. जी. 39 सहरसा (बिहार)

आजकल के जून अंक में प्रकाशित राजीव गांधी के श्वेत-श्याम चित्रों ने उनकी याद ताजा कर दी। संपादकीय में संपादक महोदय ने लोकतंत्र पर आए इस संकट के लिए लोकतंत्र विरोधी शक्तियों को जिम्मेदार ठहराया है जो कि पूर्णतया सत्य है और इन्हीं तत्वों की वजह से लोकतंत्र कठिन दौर से गुजर रहा है।

रेडियो नाटक 'कड़ुआ फल' में नाटककार चिरंजीत ने फलवाले का मार्मिक चित्रण किया है और उसके कर्त्तव्यपालन का सजीव चित्रांकन किया है इसके लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। □

आनन्द कुमार केडिया, द्वारा ए. पी. के. ट्रेडर्स, कोटा (राज.)

आजकल का जून अंक प्राप्त हुआ—21 मई की रात को हुए हादसे को जिस कदर 'आजकल' ने मुखरित किया—उसे वाणी दी—वह सचमुच काबिलेतारीफ है।

आपने इस हादसे से उत्पन्न स्थितिजन्य शोकानुभूति को जो समर्थ सशक्त वाणी दी, जन-जन के हृदय में उमड़े शोक-सागर में जो अंतरंग साझीदारी की, हाथ बटाया उसके लिए आप सभी धन्यवाद के पात्र हैं। मृदुला बिहारी, डा. भक्तराम शर्मा, उदयनारायण सिंह, रविकांत खरे, डा. दिनेश चन्द्र अग्रवाल—इन पांचों के आलेखों को एक साथ पढ़ने पर अनुभव हुआ कि आजकल बिल्कुल सांस्कृतिक पत्रिका हो गई है—खासकर प्राचीन अध्यात्म-संस्कृति से अभिन्न रूप से जुड़ी। और सब आलेख तो अपनी-अपनी जगह पर बिल्कुल ठीक हैं, काफी ज्ञानप्रद पर मृदुला बिहारी के आलेख के विषय में कहना चाहूंगा कि वे बिल्कुल शिव के अंध भक्त हो गए हैं। यह शिव का एकतरफा स्तुति गान या महिमा-गान मात्र होकर रह गया है। मैं कहना चाहूंगा कि ठीक यही बात तो राम भक्त राम के विषय में, कृष्ण भक्त कृष्ण के विषय में, दुर्गा भक्त दुर्गा के विषय में करते हैं। अंतिम शक्ति तो केवल एक ही होगी तो फिर यह अलग-अलग नामस्य और दृष्टिकोण क्यों?

डा. हरिमोहन के आलेख और डा. आरसू द्वारा आयोजित परिचर्चा ने आजकल को बिल्कुल शत-प्रतिशत सांस्कृतिक होने से बचा लिया—इन दो आलेखों ने सिद्ध कर दिया कि आजकल, अपनी घोषणानुरूप साहित्यिक पत्रिका भी है—केवल सांस्कृतिक ही नहीं।

काव्य संभाग में मधुर शास्त्री, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' व अशांत भोला सिंह की काव्य रचनाओं ने कुछ प्रभावित किया बाकी काव्य रचनाएं तो कम से कम मेरे लिए बेकार ही रहीं। सब मिल-जुलकर आजकल का यह अंक भी आजकल की परम्परागत महिमा व प्रतिष्ठा के अनुकूल ही रहा।

रवीन्द्र नाथ ओझा, डाक बंगला रोड, बेतिया (बिहार)

जून अंक पढ़ा। लोकतंत्र पर कुठाराघात सम्पादकीय एक वास्तविकता है। सत्य और अहिंसा के जनक राष्ट्र में आज हिंसा किस प्रकार सीमाओं का उल्लंघन कर रही है। यह एक सोचनीय विषय है। आज नैतिकता पर अनैतिकता किस प्रकार अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है। इसके लिए एक व्यापक जन चेतना अभियान चलाना आवश्यक हो गया है।

'वेदों में पर्यावरण शुद्धि का विधान' डा. भक्त राम शर्मा का लेख अति सुंदर है। आज वैज्ञानिक युग में पर्यावरण प्रदूषण चर्म सीमा पर पहुंच चुका है। अभी तक प्रयुक्त विषय में कोई समुचित कदम नहीं उठाया गया है। □

धनराज मालव, मालव किराना स्टोर,
केशवपुरा, कोटा (राज.)

जून 91 में 'समकालीन मलयालम नाटक नाटककारों की नजर में' शीर्षक के अंतर्गत आपने जो डा. आरसु की प्रस्तुति दी उससे काफी ज्ञानार्जन हुआ। निवेदन है कि नाटकों के ऊपर अवश्य प्रत्येक अंक में ऐसी जानकारी देते रहें। प्रदीप शर्मा 'दीप' द्वारा जाने-माने रचनाकार 'उर्मिलेश' की रचना को तोड़-मरोड़ कर छपवाना उनकी अदूरदर्शिता का परिचय है। उक्त रचना के बारे में जो संत प्रसाद वर्मा 'समीर' ने आपको जानकारी दी मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूं। मुझे लगा कि आज भी जागरुक साहित्यकार हैं जो साहित्य की रक्षा के लिए कृतसंकल्प हैं। मैं ऐसे रचनाकारों से निवेदन करना चाहूंगा कि भविष्य में भी वे ऐसे लोगों पर ध्यान देते रहें जो रचनाएं चोरी करके पत्रिकाओं में छपवाते हैं। 'नए हस्ताक्षर' शीर्षक से सम्बन्धित स्थायी स्तम्भ न पाकर थोड़ा निराशा का सामना करना पड़ा। कृपया उसे प्रारम्भ कर नए रचनाकारों को पुनः प्रवेश देने की कृपा करें। □

दीपक मैनपुरी, उप-सम्पादक, थियेटर टाइम्स,
739, रामायण प्रेस, इलाहाबाद, पुराना कटरा (उ. प्र.)

स्तरीय रचनाएं न मिल पाने के कारण हमें यह स्तम्भ स्थगित करना पड़ा है। नए रचनाकारों द्वारा सहयोग मिलने पर हम इसे पुनः प्रारंभ करेंगे। □

—सम्पादक

सम्पादकीय

एक बहुमुखी व्यक्तित्व

आधुनिक भारतीय साहित्य के युगपुरुष गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में केवल कुछ पंक्तियों में बयान करना एक अत्यंत ही कठिन कार्य है। उनके निधन को पचास वर्ष से अधिक हो चुके हैं लेकिन उनकी प्रासंगिकता आज भी ज्यों की त्यों बरकरार है। उन्होंने अपनी साहित्यिक साधना और आध्यात्मिक चिंतन से भारतीय जनमानस को और भारतीय ही क्यों, समूचे विश्व के मानव जगत को जो नवीन जीवनदृष्टि दी वह आज भी संघर्ष और संकट की घड़ी में हमारा मार्ग आलोकित करती है।

यद्यपि रवीन्द्रनाथ मूलतः कवि थे, पर मात्र कवि न थे, ठीक उसी प्रकार जैसे गांधी जी राजनीतिज्ञ न थे। उनकी प्रतिभा ने जिस-जिस का स्पर्श किया उसी को समृद्ध किया। अपने नाम को सार्थक कर उन्होंने रवि की ही भांति अपने युग को आलोक और उष्मा दी, अपने देश की नैतिक एवं मानसिक भूमि को जीवन दिया, चिंतन के अपरिचित क्षितिजों का उद्‌घाटन किया और पूर्व एवं पश्चिम की खाई पर सेतु बांधा। उनकी प्रतिभा की ऊर्जा सचमुच विस्मयकारी है। उतनी ही विस्मयकारी है उन साहित्यिक विधाओं की विविधता और चारुता, जो उन्होंने रचीं। साहित्य सृजन के लिए उन्होंने ऐसी भाषा का उपयोग किया जो चिन्तन एवं भावना के सूक्ष्मतम स्पन्दन को व्यक्त कर सके। ऐसा साहित्य रचा जिसे विश्व भर के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सके। साहित्यिक सर्जना का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसका उन्होंने अपने साहसपूर्ण अभियान द्वारा अनुसंधान और अलंकरण न किया हो।

जैसा कि हमने अभी ऊपर कहा कि रवीन्द्रनाथ केवल कवि नहीं थे, निरे स्वप्नद्रष्टा और गायक भी नहीं, वह एक महान चित्रकार भी थे, संगीतज्ञ थे, नाटककार थे, उपन्यास लेखक थे, कहानीकार थे, प्रकृति प्रेमी थे और इन सबसे बढ़कर वे एक पूर्ण विकसित मानव थे, उदारमना थे। मानवता में उनकी गहरी आस्था थी। उन्होंने जीवनपर्यन्त दीन-जनों को भौतिक सुख साधन का, नागरिकों को स्वराज्य का, अबोध जनों को ज्ञान का, बालक को अबाध विकास का और नारी को पुरुष के समकक्ष सम्मान का अधिकार दिलाने का प्रयास किया।

शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है। यहां यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में वे मार्गदर्शक थे। चालीस वर्ष तक वे तुच्छ ग्रामीण परिवेश में साधारण अध्यापक की भांति सहर्ष कार्य करते रहे। तब भी जब वे ऐसे यश के भागी बन चुके थे जिस पर राजाओं को भी ईर्ष्या हो सकती थी।

प्रचारात्मक राजनीति को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसे ऐसे इंजन की उपमा देते थे जो निरन्तर सीटी बजाता और धुआं उड़ाता रहता है, पर चलता कभी नहीं। अपने भाग्य-पोत के कर्णधारों के प्रति उनका उपदेश था, "समुद्र की लहरों का भय मत करो, पर अपने पोत के छेदों पर ध्यान दो। हम दास बने, इसलिए नहीं कि ब्रिटिश दस्यु थे, वरन् इसलिए कि हम स्वयं ही असमर्थ हो गए थे। अपनी रचनात्मक प्रतिभा के स्रोतों का विकास करने की बजाए हम दूसरे के घरों से चिथड़े बटोरने लग गए थे।" सन् 1906 में उन्होंने लिखा था—"ऐसी कोई शक्ति नहीं जो हमें देश-सेवा के पुण्य कार्य से वंचित कर सके—वह तो ईश्वर की देन है। स्वराज सदा हमारी मुट्ठी में है।"

राष्ट्र भावना और राष्ट्र भूमि के प्रति उनकी प्रीति अनन्य थी। ऐसे राष्ट्र प्रेमी हुआ करते हैं जिन्हें राजनीति के आगे अपने देश की धरती के सौन्दर्य और वैभव का पता तक नहीं है। रवीन्द्रनाथ की ममता देश की उस शस्य-श्यामला हिम-किरीटनी वसुन्धरा के प्रति कितनी अनुरागशक्ति है यह उनकी रचनाओं की अद्‌भुत वर्णछटा में प्रकाशमान है। किन्तु राष्ट्रीय आवेश जब-जब मानवीय मर्यादा के उल्लंघन पर उतारू हुए तभी रवीन्द्रनाथ की चेतावनी की वाणी उद्‌गीर्ण हुई। उसका उज्ज्वल और उद्‌दीप्त स्वर किसी भांति अनसुना नहीं किया जा सकता था।

अन्य आधुनिक विचारकों की भांति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्व के उद्धार का कोई मंत्र नहीं दिया। उनका किसी 'वाद' अथवा 'मत' में विश्वास न था। वे तो बस कुछ मूलभूत सत्यों पर जोर देते थे, ऐसे सत्यों पर जिनकी उपेक्षा करना अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के समान है। यही कारण है कि उनके विचार कभी पुराने नहीं पड़ सकते। गांधी जी ने ठीक ही कहा था कि वे हमारे महान प्रहरी थे। उनका काव्य हमें सदा आनन्द देता रहेगा। उनकी शिक्षा सदैव हमारा मार्ग आलोकित करती रहेगी। संसार उस महान विभूति का सदैव ऋणी रहेगा जिसने अपनी सारी प्रतिभा मानव हित में समर्पित कर दी। □



ये आज की कमला है

आप इसे अगर

कमला

बना दें तो कितने गर्व की बात है

ये बात सिर्फ़ एक नाम की नहीं है. ये बात है एक शुरुआत की. ऐसी बेहतर ज़िन्दगी की शुरुआत जो आप दे सकते हैं कमला को. कमला का तो भला होगा ही, पर आपको अनुभव होगा एक ऐसे सुख का, एक ऐसे गर्व का, जिसे शब्दों में बताना बहुत मुश्किल है.

काम न तो कठिन है, न इसे चाहिए बहुत ज़्यादा समय. चाहिए तो बस विश्वास, कुछ लगन. अपने पड़ोस के किसी अनपढ़ को अपनाकर हर रोज़ थोड़ा बहुत पढ़ाइए. इतना कि उसे अपना राशन कार्ड बनवाना आ जाए. भले बुरे की पहचान करना आ जाए. वो अन्ध विश्वास की धुँध के परे देख सके. छोटे स्वस्थ परिवार का मतलब समझ सके. एक बेहतर ज़िन्दगी की नींव रख सके.

आप बस हाथ बढ़ाइए. आपके साथ है राष्ट्रीय साक्षरता मिशन जो आपको शुरुआत की जानकारी दे सकता है. अब कलम उठाइए और साथ दिया कूपन भरकर भेजिए.

सच मानिए, आप भी किसी कमला को ऐसी ज़िन्दगी दे सकते हैं. जिसे देकर आपको होगा एक अनोखा गर्व. गर्व, किसी को नाम देने का. गर्व, किसी की ज़िन्दगी को नई शुरुआत देने का.

चलो पढ़ाएं, कुछ कर दिखाएं

जी हाँ, मैं किसी को पढ़ाकर उसकी ज़िन्दगी बेहतर बनाना चाहता/चाहती हूँ. कृपया मुझे, पढ़ाने की जानकारी इस भाषा में भेजिए : _____

नाम : _____

_____

पता : _____

_____

_____

भेजिए : राष्ट्रीय साक्षरता मिशन
पोस्ट बॉक्स नं. 9999, नई दिल्ली 110011

डी.ए.वी.पी. 91/41

राष्ट्रभाषा हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ

डा. वासुदेव

इदं अन्धतमं कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम।
यदि शब्दाह वयं ज्योति : आसंसारातन दीप्यते।।

—आचार्य दण्डी

"यह सारा का सारा त्रैलोक्य ही घोर अंधकार में डूबा रहता, यदि शब्द के आह्वान की ज्योति समस्त संसार को उद्‌भासित न कर देती।"

निस्सन्देह मानवीय संस्कृति की सबसे मूल्यवान उपलब्धि भाषा ही है। यही कारण है कि हिन्दी की आदि जननी संस्कृत को भारतीय मनीषियों ने 'देव भाषा' के रूप में नामकरण किया था। धीरे-धीरे यही 'देव भाषा' वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, ब्रजभाषा आदि रूपों में परिवर्तित-परिवर्धित होती, सजती-संवरती हिन्दी के सांचे में ढली जिसे आज राज-भाषा, राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा का गौरवमय सम्मान प्राप्त है।

बापू ने जब कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है तो उन्होंने भारतीयों के हृदय की मूक भाषा को ही वाणी प्रदान की थी। उनकी धारणा थी कि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा तभी बनाया जा सकता है, जब उसमें निम्नलिखित पांच गुण विद्यमान हों—

(क) उस भाषा को देश के अधिकांश निवासी बोलते हों।

(ख) वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो।

(ग) वह भाषा क्षणिक या अल्प स्थायी हितों के ऊपर निर्भर हो।

(घ) उस भाषा के द्वारा देश के परस्पर धार्मिक और आर्थिक व्यवहार निभ सकें और

(ङ) वह भाषा राज्य कर्मचारियों के लिए सरल हो।

उनकी दृष्टि में उपर्युक्त पांचों गुण हिन्दी में विद्यमान रहे हैं। अतः उन्होंने हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा बनाए जाने का सतत प्रयास किया। और केवल बापू ही नहीं अपितु अन्य अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विद्वानों ने भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की सिफारिशें कीं, जिनमें केशवचन्द्र सेन, राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक, महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर, सुब्रह्मनियम भारती आदि विद्वानों के नाम सादर लिए जा सकते हैं।

इन विद्वानों के द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपना-अपना समर्थन देने का मुख्य कारण यही था कि हिन्दी इस देश के सबसे बड़े जन-समूह की भाषा थी और शेष भारत में भी यह समझी-बोली जाती थी। पिछले करीब हजार वर्षों से जब राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में संस्कृत का प्रचलन कम हो गया था, तब हिन्दी राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा, दोनों रूपों में भारत तथा आस-पास के कुछ देशों में व्यवहृत होती रही थी। वैसे भी भारत के निवासियों ने अपनी राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा की समस्या का समाधान अत्यंत सहज और स्वाभाविक गति से उसी रोज ढूंढ़ लिया था जिस दिन संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के स्थान पर धीरे-धीरे सारे देश में हिन्दी को ही देश-भर के तीर्थ यात्री, व्यवसायी और पर्यटक संपर्क भाषा के रूप में काम में लाने लगे थे। इतना ही नहीं, अंग्रेजी राज्य काल में भी भारत की न केवल हिन्दी-भाषी रियासतें बल्कि अनेक अहिन्दी भाषी रियासतों में भी न केवल राजकाज बल्कि संपर्क भाषा के रूप में भी हिन्दी का प्रचलन था। अफसोस की बात यह कि स्वराज-प्राप्ति के बाद इन देशी रियासतों के क्षेत्रों में भी न केवल हिन्दी का प्रचलन बन्द कर दिया गया बल्कि उसके स्थान पर अंग्रेजी का ही एकछत्र राज्य हो गया।

जब 9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा की प्रथम बैठक हुई और डा. राजेन्द्र प्रसाद को उसका प्रथम अध्यक्ष चुना गया, तब उन्हीं की अध्यक्षता में यह निर्णय लिया गया कि सभा की कामकाज की भाषा हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी होगी। किन्तु इस बीच भारत-पाक विभाजन हो गया जिसके कारण 14 जुलाई, 1947 को संविधान सभा के चौथे सत्र के दूसरे दिन यह संशोधन प्रस्तुत किया गया कि हिन्दुस्तानी के स्थान पर हिन्दी शब्द रखा जाए। मतदान में हिन्दी के पक्ष में 32 वोट पड़े।

1948 में जवाहर लाल नेहरू ने एक अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता पर बल दिया तथा यह स्पष्ट किया कि स्वतंत्र देश को अपनी ही भाषा में राजकाज चलाना चाहिए। 6-7 अगस्त, 1949 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें नागरीलिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को एकमत से स्वीकार किया गया। फिर तो तूफानी बैठकें ओर बहसें चलती रहीं। सर्वाधिक बहसें अंकों पर हुईं। अंततः 16 सितम्बर, 1949 को तालियों की गड़गड़ाहटों के बीच हिन्दी, राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित की गई तथा अंग्रेजी के अंकों को राष्ट्रीय अंक के रूप में स्वीकार किया गया। यहां मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि आज जिसे हम अंग्रेजी के अंक कहते हैं, वे मूलतः भारतीय ही हैं। जब इस अंक को लेकर बहसें चल रही थीं, तब मौलाना अबुल कलाम आजाद ने समझाते हुए कहा था, "ये अंक असल में हिन्दुस्तान की देन है जो सदियों पहले हमने दुनिया को दिया था। उनको अपनाकर हम अपनी चीज वापस ले रहे हैं।" (डिबेट्स पृ. 01458)

इस तरह 1950 में लागू भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी संघ की राष्ट्रभाषा तो बनाई गई किन्तु अनुच्छेद 343 (2) के अनुसार यह भी व्यवस्था की गई कि संविधान के लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक अर्थात् 1965 तक संघ के सभी सरकारी कार्यों के लिए पहले की भांति अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रहेगा। यह

व्यवस्था इसलिए की गई थी कि इस बीच हिन्दी न जानने वाले हिन्दी की जानकारी प्राप्त कर लेंगे तथा हिन्दी को प्रशासनिक कार्यों के लिए सभी प्रकार से सक्षम बनाया जा सकेगा।

किन्तु अनुच्छेद 343 (3) में संसद को यह अधिकार भी दे दिया गया कि वह 1965 के बाद भी सरकारी काम-काज में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के बारे में व्यवस्था कर सकती है। और सचमुच अनुच्छेद 343 (3) राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में सबसे बड़ा रोड़ा सिद्ध हुआ, तथा यही कारण है कि आज 40 वर्षों के बाद भी हिन्दी अपने ही देश में सौतन जैसी पराई बनी हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण है अंग्रेजी के प्रति हमारा मोह जिसके बारे में बापूजी ने कहा था, "अंग्रेजी ने हमें मानसिक रूप से पंगु बना दिया है...।"

किन्तु इसके विपरीत दूसरी ओर स्थिति यह है कि आज भारत के बाहर प्रायः हर देश में कुछ न कुछ हिन्दी भाषी मौजूद हैं। 1975 में कानपुर में सम्पन्न प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में रूस के हिन्दी विद्वान प्रो. येगेनी चेलीशेव ने कहा था, "समसामयिक विश्व में बढ़ती सकारात्मक भूमिका अदा कर रहे महान एशियाई देश की एक सर्वाधिक विकसित और प्रचलित भाषा हिन्दी को 'विश्वभाषा' बनाना चाहिए।" इनसे कई कदम आगे बढ़कर 1983 में दिल्ली में सम्पन्न तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि, "हिन्दी भारत की राजभाषा के साथ-साथ एक समृद्ध विश्व भाषा है।"

और सचमुच, उन लोगों की भविष्यवाणी सही साबित हो रही है। "आज डेनमार्क, ओसलो, स्वीडन, ग्रीनलैण्ड हो या फिनलैंड, चीन हो या जापान, रूस हो या कोरिया, अमेरिका या फिर कैनेडा, कहीं भी हिन्दी भाषा के उच्चारण को सुनने के लिए हमें तरसना नहीं होगा। हर सड़क और हर मोड़ पर कोई भारतीय मिल जाएगा और मजे में आप उसे 'नमस्ते या नमस्कार कर सकते हैं।" (राजेन्द्र अवस्थी)

एक सर्वेक्षण के अनुसार हिन्दी विश्व में तीस से ऊपर देशों में पढ़ी-पढ़ाई जाती है। लगभग 110 विश्वविद्यालयों में उसके लिए अध्ययन-केन्द्र खुले हुए हैं। अकेले अमेरिका में लगभग 20 केन्द्रों में हिन्दी के अध्ययन अध्यापन एवं शोध की व्यवस्था है। तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डा. आर. एस. मैग्रेगर ने इंग्लैंड में हिन्दी प्रयोग के बारे में बताते हुए कहा था, "अभी प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया है कि यह ब्रिटेन की एक जुबान बन गई है!"

भारत के बाहर हिन्दी का सबसे बड़ा हिमायती मारीशस रहा है जिसे अगस्त 1976 में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन की मेजबानी करने का गौरव प्राप्त है। यहां पहले अफ्रीकी दास लाए गए थे और कोड़े मार-मारकर उनसे पत्थर उठवाए गए। पुर्तगाली और फ्रांसीसी शासक कोड़े के बल पर भी यह काम नहीं करा सके। तब आए बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग। उन्होंने कोड़े भी खाए, लेकिन मेहनत भी की और धीरे-धीरे समूचे द्वीप को उपजाऊ मिट्टी में बदल दिया। खेतों के बीच में छिट-पुट पड़े पत्थर इस बात के गवाह हैं कि उन भारतीयों ने इतने भारी पत्थर जमीन से उठाए थे। भारत अब भी उनकी 'महतारी' भूमि है। और उनकी भाषा भोजपुरी हिन्दी है। उस देश में आज बहुमत भी इन्हीं लोगों का है, इसलिए भारतीय मूल के व्यक्ति ही वहां प्रधानमंत्री चुने जाते हैं।

मारीशस के बाद हमारा ध्यान फीजी की ओर जाता है। यह प्रशान्त महासागर का एक छोटा-सा देश है जो छोटे-बड़े अनेक द्वीपों का समूह है। आबादी साढ़े सात लाख के करीब है किन्तु कुल जनसंख्या का 53 प्रतिशत लोग हिन्दी भाषी ही हैं। उसी तरह सूरीनाम की कुल आबादी की आधी संख्या भारतीय मूल के लोगों की ही है जिनकी भाषा भोजपुरी हिन्दी ही है। गुयाना दक्षिणी अमेरिका का एक देश है, जहां लगभग 55 प्रतिशत आबादी भारतीय मूल की है। वैसे वहां के भारतीय मूल के लोगों में तमिल का भी प्रयोग होता है, किन्तु मुख्य रूप से उनकी भाषा भोजपुरी हिन्दी ही है। वे लोग अपनी भाषा को 'हिन्दी', 'हिन्दुस्तानी' या 'टूटल माखा' (टूटी भाषा का भोजपुरी रूपांतर) कहते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका का एक छोटा-सा देश है त्रिनिदाद। 1865 में यहां मात्र 213 भारतीय ले जाए गए थे। किन्तु आज उनकी आबादी 15 लाख से भी ऊपर है जिनमें समय-समय पर 'होली खेले रघुवीरा अवध में' तथा 'बंसीवारै बिरज मत जइयो' जैसे लोकगीत आनंद विभोर होकर गाए और सुने जाते हैं। त्रिनिदाद में पियाश्कों हवाई अड्डे पर उतरते ही हिन्दी में 'स्वागतम' लिखा देखकर मन फूल की तरह खिल उठेगा।

इसी तरह दक्षिणी अफ्रीका, बर्मा, नेपाल, हालैंड, कनाडा आदि देशों में भी हिन्दी बोलने-समझने वालों की एक खासी संख्या है, और मजे की बात तो यह है कि वहां से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के भी नियमित प्रकाशन हो रहे हैं।

सोवियत संघ में हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन से संबंधित विशाल कार्य सर्वविदित है। 'सोवियत भूमि' एवं 'सोवियत नारी' नामक पत्रिकाओं से तो अधिकांश भारतीय परिवार जुड़े हुए हैं। सोवियत संघ के प्रसिद्ध भाषाविद् प्रो. येगेनी चेलीशैव ने जनवरी, 1955 में नागपुर में सम्पन्न प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में पहली बार घोषणा की थी, "हमें इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि समसामयिक विश्व में बढ़ती सकारात्मक भूमिका अदा कर रहे महान एशियाई देश की एक सर्वाधिक विकसित और सर्वाधिक प्रचलित भाषा हिन्दी को विश्व भाषा बनाना चाहिए, कि इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की अधिकृत भाषा के रूप में स्वीकृति मिलनी चाहिए...।"

प्रो. येगेनी चेलीशैव की उक्त घोषणा का सबसे बड़ा कारण यही था कि विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दी का स्थान तीसरा है और विश्व में सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में हिन्दी का स्थान अंग्रेजी के बाद आता है। यह हमारे लिए प्रसन्नता की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की छः महत्वपूर्ण भाषाओं अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, स्पेनिश, चीनी और अरबी के साथ हिन्दी को भी सातवीं भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

(शेष पृष्ठ 26 पर)

विवादास्पद कहानीकार सआदत हसन मंटो

मंटोनामा

सम्पादक-देवेन्द्र इस्सर



डा. गुरचरण सिंह

क्या पढ़ रहे हो?
मंटों की कहानियां।

इस उमर में!

मंटों की कहानियों से सम्बन्धित लोगों की धारणा में अब भी कोई अन्तर नहीं आया है। आलोचकों का सबसे बड़ा आरोप है कि मंटो नग्नतावादी है। मंटो ने लिखा भी है कि "नंगा आदमी खुदा के बहुत करीब होता है—जिन्दगी में भी और मृत्यु में भी।" मंटो ने केवल यौन पर ही नहीं लिखा है। अन्य विषयों पर भी उसकी बहुत-सी चर्चित कहानियां हैं। पर पत्र-पत्रिकाओं ने मंटो की पांच-सात कहानियों को बार-बार प्रकाशित किया। इससे लोगों के मन में ऐसी धारणा बन गई कि मंटो का प्रिय विषय सैक्स है। मंटो से सम्बन्धित लोगों के मन में बनी इस धारणा को तोड़ने के लिए यह आवश्यक था कि मंटो की चर्चित कहानियों से पाठकों का परिचय कराया जाए। इस सम्बन्ध में देवेन्द्र इस्सर ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। मंटों पर उनकी एक साथ चार पुस्तकें प्रकाश में आई हैं। 'मंटोनामा' में मंटो की बाईस कहानियां, दो नाटक तथा उनके समकालीन आलोचकों-लेखकों के मंटो तथा उनके साहित्य से सम्बन्धित विचार हैं जिसमें कृष्णा सोबती, कृश्नचन्दर, देवेन्द्र सत्यार्थी, इस्मत चुगताई प्रमुख हैं। इस तरह मंटोनामा मंटो पर पूर्ण पुस्तक है। 'मंटोनामा' पुस्तक इतनी प्रसिद्ध हुई कि देवेन्द्र इस्सर को लोग मंटोनामा के साथ जोड़कर जानने लगे हैं। दूसरी पुस्तक 'मंटो की श्रेष्ठ कहानियां' में बाईस कहानियां हैं। ये सभी कहानियां मंटोनामा में आ गई हैं।

मंटो कहीं भी उपदेशक के रूप में हमारे सामने नहीं आता है। फिर भी वह अपनी कहानियों के माध्यम से हमारे सामने कई प्रश्नों को उछालता है—औरत वेश्या क्यों बनती है? उन्हें उबारने के लिए समाज को क्या करना चाहिए? 'सौ केण्डल का बल्ब' कहानी में कथा का मैं वेश्या के कोठे से चुपचाप वापस आ जाता है क्योंकि वह देखता है कि वेश्यावृत्ति के लिए औरत को विवश किया जा रहा है। वह इस अत्याचार को सहन नहीं कर पाता। उसके मन में आता है कि वह दलाल का सिर फोड़ दे। वह तो सिर नहीं फोड़ पाता पर अगले दिन वह स्त्री ही दलाल की हत्या कर देती है।

नारेबाजी या बड़बोलेपन में मंटो को विश्वास नहीं है। वह अपनी बात को सहजता के साथ प्रभावशाली ढंग से कहता है। कथा साहित्य में पहली बार गिरे हुए वर्ग को गम्भीरता के साथ मंटो ने शामिल किया। वह अपनी कहानियों में वेश्याओं, गुंडों तथा उनके पास आने वाले लोगों के असली चेहरों को हमारे सामने रखता है। मंटो इन स्थितियों का चित्रण मात्र मनोरंजन के लिए नहीं करता बल्कि उन स्थितियों के पीछे की अमानवीय, अनैतिक तथा अपवित्र जिन्दगी के दहशतपूर्ण चित्रों को हमारे सामने रखता है। इसी कारण मंटो की कहानियां रति सुख नहीं देतीं बल्कि रति क्रीड़ा के विरुद्ध घृणा का भाव पैदा करती हैं।

मंटो अन्याय, अत्याचार और शोषण को सहन नहीं कर पाता। यह शोषण सैक्स का भी हो सकता है और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक भी। मंटो बचपन से विद्रोही था। उसने कठिन से कठिन स्थितियों में भी समझौता नहीं किया। वह हक और न्याय के लिए सारी उम्र लड़ता रहा।

मंटो की पहली कहानी 'तमाशा' जलियांवाला बाग की घटना से प्रेरित थी तो टोबा टेक सिंह देश विभाजन की त्रासदी तथा लोगों के पागलपन और पाशविकता को अभिव्यक्ति करती है। धर्म, सम्प्रदाय तथा भाषा के नाम पर आदमी कितना क्रूर, अत्याचारी और घिनौना हो जाता है, इसे मंटो बार-बार लिखता है। कथाकार व्यक्ति में मानवता की किरण को देखना चाहता है। उसकी रचनाओं में घिनौने से घिनौने चरित्र में भी इन्सानियत की एक किरण नजर आती है।

पचास-साठ साल पहले मंटो ने जो कहानियां लिखी थीं वे आज अधिक प्रासंगिक हैं। मंटो अपने समय से बहुत आगे था। शायद इसी कारण लोग उसकी कहानियों को ठीक तरह से नहीं समझ सके। अश्लील कही जाने वाली कहानियों में मंटो के नैतिक साहस को देखने की तथा उसकी प्रशंसा करने की आवश्यकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम मंटो के जीवन दर्शन के सूत्र को उसकी कहानियों में पकड़ें और फिर धीरे-धीरे उसके दूसरे छोर की तलाश करें। परम्परा और नैतिकता यौन भाव के दमन के पक्ष में थी और मंटो यौन भाव के दमन से उत्पन्न होने वाली विभिन्न ग्रंथियों से लोगों को बचाना चाहता था। मंटो का यौन चित्रण न तो उत्तेजक है और न अश्लील। उसकी कहानियों को पढ़ने के उपरान्त स्थितियों को समझने तथा उनका विश्लेषण करने को मन करता है। उसकी कहानियां व्यक्ति को बड़ा बनाती हैं यही उनकी विशेषता है।

अश्लीलता का प्रश्न

'मंटो अदालत के कटघरे में' देवेन्द्र इस्सर की मंटो पर तीसरी पुस्तक है। इसमें मंटो की उन कहानियों को संकलित किया गया है जिन पर मुकदमा चला था और कहानियों पर अश्लीलता का आरोप लगाया गया था। इस पुस्तक का महत्व इसलिए है कि कहानियों के साथ-साथ अदालत की कार्यवाही, गवाहों के बयान, तथा मंटो के जवाब भी दिए गए हैं। इससे कहानियों को समझने में निश्चित रूप से सहायता मिलती है।

'काली सलवार', 'बू', 'ठंडा गोश्त', 'ऊपर, नीचे और दरमियान', तथा 'खोल दो' कहानियों पर अश्लीलता का आरोप लगाया गया और मंटो को अदालत के कटघरे में खड़ा किया गया था। इन कहानियों पर मुकदमें चलने से एक लाभ यह हुआ कि अश्लीलता के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया गया। मंटो की कहानियों में ऐसा वर्णन कहीं नहीं है जो उत्तेजित करता हो। उसकी कहानियों में पीड़ा और घृणा का भाव ही उभरता है। अश्लीलता वहीं होती है जहां हम सैक्स को गुप्त रूप से प्रकट करते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति भय और पाप को अनुभव करता है। पर इसके विपरीत मंटो हर स्थिति को खुले रूप में देखता है।

'काली सलवार' की सुल्ताना वेश्या है जिसके पास अनेक गोरे सिपाही आया करते थे, पर जब से वह दिल्ली आई है उसका कारोबार ठप्प है। उसकी दयनीय स्थिति तथा मुहर्रम के लिए काली सलवार की इच्छा पाठक के मर्म को छूती है। मुहर्रम के लिए तैयारी वेश्याओं की धार्मिक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। सुल्ताना के शंकर के साथ सहज सम्बन्ध भी मन को मोहते हैं। धर्म उनके मार्ग में आड़े नहीं आता। सुल्ताना की पीड़ा, व्यथा, उसकी इच्छा को मंटो ने कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

सुल्ताना के जीवन के विविध चित्रों को मंटो संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। लेखक जब मालगोदाम, गाड़ी के डिब्बों, पटरियों आदि का वर्णन करता है तो वास्तव में वह सुल्ताना के जीवन को ही रूपायित करता है जो धक्का खाए डिब्बे की तरह पटरियां बदल रहा है।

प्रत्येक स्त्री के शरीर से वही खुशबू या बू या ऊष्मा प्राप्त नहीं हो सकती जिसकी व्यक्ति इच्छा करता है। 'बू' कहानी इसी ओर संकेत करती है। मातहत अदालत ने 'बू' कहानी को अश्लील पाया और मंटो को सजा दी पर हाईकोर्ट में अपील करने पर मंटो को ससम्मान छोड़ दिया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अश्लीलता सम्बन्धित अलग-अलग राय हो सकती है।

मंटो की यौन कहानियों में 'ठंडा गोश्त' का विशेष महत्व है। पुरुष का अन्य स्त्रियों के प्रति आकर्षण और स्त्रियों का अन्य स्त्रियों के प्रति सौतिया डाह जानी-पहचानी कमजोरी है। कहानी में इसी भाव की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। 'खोल दो' कहानी किसी भी सम्वेदनशील व्यक्ति की आंखों में आंसू ला सकती है। देश विभाजन के समय सकीना अपने पिता से बिछुड़ जाती है। वह अनेक लोगों की हवस का शिकार होती है। पिता की मुलाकात मृत सकीना से अस्पताल में होती है। पिता जब खुशी से 'सकीना' चिल्लाता है तो—"सकीना के मुर्दा जिस्म में जुंबिश हुई। बेजान हाथों से उसने इजारबंद खोला और सलवार नीचे सरका दी। डाक्टर सिर से पैर तक पसीने में गर्क हो गया।" दरिन्दे इन्सानों से सकीना कितनी आतंकित है। इससे सुन्दर उदाहरण कहां मिल सकता है। 'धुआं' कहानी किशोर मनोविज्ञान पर आधारित है। मसऊद किशोर है। उसके अन्दर कुछ विकसित हो रहा है जो उसकी समझ से परे है। मसऊद के मन में यौन भावना की उपस्थिति का वर्णन मंटो ने कहीं नहीं किया है। बस उसके अहसास को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। किशोर में पनप रहे यौवन की समस्या के साथ-साथ कहानी माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों के दायित्व की ओर भी संकेत करती है। कहानी के माता-पिता दिन में भी रति सुख का आनन्द लेना चाहते हैं और मसऊद को यह कह कर बाहर रखते हैं कि मां, अब्बा का सिर दबा रही है। 'ऊपर, नीचे और दरमियान' कहानी पर अदालत ने मंटो पर पच्चीस रुपये का जुर्माना किया था। कहानी में वह स्त्री-पुरुषों की भावनाओं का चित्रण है। दोनों में बेहद प्रेम है। दोनों एक-दूसरे के स्वास्थ्य के लिए चिंतित हैं। स्वास्थ्य के कारण ही रति क्रीड़ा में संलग्न नहीं हो पाते तो दूसरी ओर उनके नौकर-नौकरानी जीवन का भरपूर आनन्द ले रहे हैं।

इन कहानियों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी कहानियां हैं जिनमें वेश्यावृत्ति या यौन चित्रण हुआ है। देवेन्द्र इस्सर ने इन्हें 'मंटो नामा' में संकलित किया है। 'शिकारी औरतें' में ऐसी औरतों का चित्रण है जो सड़क पर ग्राहकों को ढूंढ रही हैं। 'हतक' कहानी में मंटो ने सुगन्धी जैसे अमर पात्र की सृष्टि की है जिस पर कथा साहित्य को गर्व हो सकता है। 'मोजेल' की नायिका भी विभिन्न पुरुषों के सम्पर्क में रह चुकी है।

मंटो की जिन कहानियों पर मुकदमे चले या जिन अन्य कहानियों में लोगों ने अश्लीलता को देखा जब हम उन्हीं कहानियों को आज पढ़ते हैं तो लगता है कि उनमें ऐसी क्या बात थी जिस पर मुकदमा चलाने की आवश्कयता पड़ी। कहानियों में वर्णित घटनाओं को आज हम सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

प्रकाश की किरण

मंटो की प्रत्येक रचना के पहले लिखा 786 का शब्द (बिस्मिल्लाह) इस बात का द्योतक है कि वह आस्थावान था। पर

लोगों ने उसे खुदा को न मानने वाला समझा। मंटो ने एक जगह लिखा भी है—"मंटो, जिस पर अश्लील लेख के लिए कई मुकदमें चले, बहुत शील पसन्द है।"

मंटो के सोचने का तथा व्यक्ति को देखने का तरीका एकदम अलग है। वह अत्याचारी या सहृदय व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करता है। अत्याचारी जब सामान्य व्यक्ति होता है तब वह अत्याचार के पक्ष-विपक्ष में क्या तर्क देता है—मंटो इस बात को पकड़ना चाहता है। मंटो देखता है कि अत्याचारी के मन में भी दया, ममता और प्रेम का भाव होता है। मंटो ऐसे क्षण की तलाश में रहता है। उसकी अधिकांश कहानियों में प्रकाश की इस किरण को देखा जा सकता है।

वेश्या हमारे लिए घृणा की पात्रा है। वह गिरी हुई बदचलन औरत है। पर मंटो की सभी वेश्याएं अन्दर से कितनी कोमल, करुण और दयावान हैं, यह उनके चरित्र पर गहराई से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है। 'हतक' की सुगन्धी, मद्रासी औरत की सहायता के लिए रात के दो बजे सेठ के साथ जाने को तैयार हो जाती है। माधो का स्वागत वह इसलिए करती है क्योंकि उसमें औरत का रूप अभी जिंदा है। अपने एक ग्राहक से यह जानने पर कि उसका पर्स गुम हो गया है, वह उससे पैसे नहीं लेती। 'मम्मद भाई' कहानी का गुंडा जितना नेकदिल और मुसीबत के समय काम आने वाला है, इतना नेक और शरीफ कहलाने वाला इन्सान भी नहीं हो सकता। 'बाबू गोपीनाथ' का गोपीनाथ अपनी रखैल जीनत के लिए चिंतित है। वह उसे चतुर और चालाक बनाना चाहता है जिससे उसके बाद वह जिन्दगी का सामना कर सके। वेश्यागमन करने वाला गोपीनाथ अपनी चरित्रहीनता और विलासिता के बावजूद दयावान, हमदर्द और अच्छे चरित्र का मालिक है। उसे तभी सुख की नींद आती है जब जीनत का एक अच्छे घर में विवाह हो जाता है। 'मोजेल' कहानी की नायिका मौजमस्ती का जीवन बिताने वाली स्त्री है। तिरलोचन उसे प्रेम करता है, पर मोजेल को शादी-विवाह का बन्धन पसन्द नहीं। कहानी के अन्त में साम्प्रदायिक दंगों के दिनों में तिरलोचन की होने वाली पत्नी को दंगाग्रस्त क्षेत्र से निकालने में वह तिरलोचन की सहायता करती है। और अपने प्राणों को दांव पर लगा देती है। 'ठंडा गोश्त' का ईशर सिंह छः लोगों का खून करने के उपरान्त कंधे पर लदी औरत से जब सम्भोग करने लगता है तो उसे मृत पा सुन्न रह जाता है। उसकी अन्तरात्मा उसे कोसती है। इस घटना का इतना गहरा आघात उसे लगता है कि वह सदा के लिए नपुंसक हो जाता है। उस क्रूर व्यक्ति में कहीं कुछ ऐसा है जो उसे आदमी की संज्ञा देता है। मंटो स्वीकारता है कि वह वहशी से वहशी व्यक्ति में भी इन्सानियत की किरण देखता है। मंटो इन्सान को उसके असली रूप में हमारे सामने रखता है।

सियासत में कोई दिलचस्पी नहीं

देवेन्द्र इस्सर की मंटों पर चौथी पुस्तक है—'मंटो की राजनीतिक कहानियां' इस संकलन की कुछ कहानियों का सम्बन्ध तो सीधा राजनीति से है, पर शेष कहानियों का सम्बन्ध साम्प्रदायिक दंगों के साथ है। इन दंगों के पीछे कहीं तो राजनीति का हाथ नजर आता है और कहीं प्रत्यक्ष रूप से नहीं। इन कहानियों को राजनीतिक कहानियां क्यों कहा गया यह विवाद का विषय हो सकता है। साम्प्रदायिक दंगों के दौरान स्त्रियों पर अत्याचार की श्रेष्ठ रचना है 'खोल दो' पर इसे राजनीतिक कहानी कहना तर्कसंगत नहीं है।

मंटो ने लिखा है कि राजनीति में उसकी कोई रूचि नहीं है, पर उसकी राजनीति सम्बन्धित कहानियां पढ़ने पर लगता है कि वह चिंतनशील है। आजादी से पहले के भारत और देश विभाजन की घटनाओं ने उसे मथा है। 'तमाशा' मंटो की पहली कहानी है। इसका सम्बन्ध जलियांवाला बाग की घटना के साथ है। खौफनाक वातावरण और आतंक की छाया को एक बच्चे के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कहानी में आतंक की छाया धीरे-धीरे फैलती और गहराती है और अन्त में इतनी सघन हो जाती है कि सहना कठिन हो जाता है। लगता है अभी हमारे सीने में भी गोली दाग दी जाएगी। व्यक्ति की असहयता और विवशता का इतना सजीव चित्रण बहुत कम कहानियों में हो पाता है। 'नया कानून' कहानी में अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति की आशा का भाव व्यक्त हुआ है। मंगू कोचवान के मन में अंग्रेजों के प्रति सख्त नफरत है। पहली अप्रैल से लागू होने वाले कानून के बारे में उसने जो सुना है उससे उसे लगता है कि अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिलेगी, पर उसे कहीं कोई परिवर्तन नजर नहीं आता। अंग्रेजों के प्रति घृणा का भाव और परिवर्तन का कहीं नजर न आना ही शायद अंग्रेज को पीटने का कारण बनता है।

मंटो ने किसी भी कहानी में साम्प्रदायिक या धार्मिक भावों को भड़काया नहीं है। साम्प्रदायिक तनाव को पैदा करने वाली कहानियां भी पाठकों के मन में करुणा और दया का भाव पैदा करती हैं। साम्प्रदायिक दंगों की अभिव्यक्ति मंटो की कई कहानियों में हुई है। 'खुदा की कसम', 'मोजेल', 'ठंडा गोश्त', 'खोल दो', 'गुरमुख सिंह की वसीयत', 'टोबा टेक सिंह', 'सहाय' आदि ऐसी ही कहानियां हैं। 'खुदा की कसम' में दंगों के दौरान बेटी मां से बिछुड़ जाती है। मां पगलाई-सी उसे दर-दर ढूंढती है। अन्त में बेटी जब मां को देखती है तो चुपचाप आगे बढ़ जाती है। मां की ममता और बदलते रिश्तों को मंटो ने कुशलता से अभिव्यक्त किया है। 'मोजेल' में तिरलोचन की सहायता करते हुए मोजेल अपने प्राणों का बलिदान देती है। 'ठंडा गोश्त' और 'खोल दो' में दंगों के दौरान औरतों की इज्जत से खेलने का वर्णन है। 'गुरमुख की वसीयत' एक ओर मुसलमान-सिख भाई चारे का वर्णन करती है तो दूसरी ओर दोनों कौमों को एक-दूसरे के खून का प्यासा भी दिखाया गया है। 'सहाय' कहानी में मंटो ने लिखा है—"यह मत कहो कि एक लाख हिन्दू मर गए और एक लाख मुसलमान मर गए—यह कहो कि दो लाख इन्सान मर गए।" वह लिखता है—"वे लोग बेवकूफ हैं जो समझते हैं कि बन्दूकों से मजहब शिकार किए जा सकते हैं।" आवश्यकता सहाय जैसे लोगों की है जो सही इन्सान था—सम्प्रदाय और धर्म से बहुत ऊपर। जिस दिन लोग सहाय जैसे हो जाएंगे आपसी कटुता, शत्रुता अपने आप समाप्त हो जाएगी। 'टोबा टेक सिंह' देश विभाजन पर लिखी गई एक सशक्त रचना है। "फिर आई टोबा टेक सिंह ओपड़ दी, एनेक्स दी, बेध्याना दी, मूंग दी दाल आफ पाकिस्तान एण्ड हिन्दुस्तान, आफ दी दुर फुट्टे मुंह?" कृष्णा

सोबती ने लिखा है—टोबा टेक सिंह की इस ऊटपटांग पंक्ति पर बेहिसाब लोगों को पहले हंसते देखा है—फिर रोते और फिर मिल-जुल कर हंसते भी और रोते भी। यह कहानी किसी भी छोटे-बड़े और बड़े से बड़े लेखक के लिए कीमती जामा है। यह माथा कहानी है। 'टोबा टेक सिंह' जैसी कहानी लिखने के लिए जीवन के गहरे अनुभवों की आवश्यकता है। उसके बिना यह पकड़ में नहीं आ सकती। इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए मंटो को एक महीना पागलखाने में रहना पड़ा था।

कहने का अन्दाज

सलीम अख्तर के अनुसार "मंटो की रचनाओं में दुनिया एक प्रयोगशाला की सूरत धारण करके यौन अनुभवों की तस्वीरों की स्लाइड पेश करती है। यौन मंटो का प्रिय विषय है। कहानी का सम्बन्ध समाज से हो या राजनीति से यौन किसी न किसी रूप में कहानी में आ ही जाता है। मंटों की कहानियां उसके जीवन अनुभवों को व्यक्त करती हैं। कहानी का विषय सुनते समय भी वह सतर्क रहता है। वह अपनी कहानियों में आदमी के अलग-अलग चेहरों को चित्रित करता है। यह आदमी जालिम भी है और मजलूम भी, करुणा से भरा हुआ भी और कठोर भी, वहशी भी और दयावान भी। कहानी के प्रारम्भ में जो पात्र बुरे नजर आते हैं अन्त में वे ही चरित्रवान हो जाते हैं। मंटो कहानियों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करता है। कहीं सम्वाद प्रधान है तो कहीं ब्यौरे तो किसी-किसी कहानी में वह तीखे व्यंग्य का प्रयोग करता है। मंटो ने अपनी कहानियों के माध्यम से वही कहा है जो एक ईमानदार लेखक को कहना चाहिए। घटना कैसी भी हो मंटो ने उसे साहित्यिक और नैतिक रूप दिया है। मंटो की रचनाएं उसके जीवन दर्शन को व्यक्त करती हैं जिनके लिए वह अन्त समय तक लड़ता रहा। मंटो वास्तव में अपने समय से बहुत आगे था। लोग उसे ठीक तरह से समझ नहीं पाए।

मंटो शब्दों का प्रयोग बहुत सोच-समझ कर करता है। वह उर्दू के साथ-साथ हिन्दी, पंजाबी तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी खुल कर करता। वह इस पक्ष में है कि उर्दू को अन्य भाषाओं के शब्दों को स्वीकार करना चाहिए। मंटो लम्बे-चौड़े ब्यौरे देने में विश्वास नहीं रखता। इसी संतुलन के कारण उसकी कोई भी कहानी न तो भटकती है और न कमजोर पड़ती है। मंटो कहानी का अंत अचानक कर देता है। पाठकों को शॉक देना उसे अच्छा लगता है। वह चाहता है कि पाठक भी स्थिति पर विचार करें और अपनी राय कायम करें। मंटो कहानी के अन्तिम वाक्य पर बहुत मेहनत करता है तभी अन्त कलात्मक, अर्थपूर्ण और प्रभावी बनता है।

'शहीद साज', 'हतक', जैसी कुछ कहानियों में तीखा व्यंग्य है। लेखक को लगता है कि लोगों को शहीदी दिलाना नेक काम है। पर वह मरियल से मरियल आदमी को भी शहीद होने के लिए तैयार नहीं कर पाता। वह लोगों को शहीदी दिलाने के रास्ते निकाल लेता है। 'हतक' में व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है—"जिसे वह सेठ के नाम से पुकारा करती थी, अभी-अभी उसकी हड्डी-पसलियां झिंझोड़ कर शराब के नशे में चूर घर वापस गया है। वह रात को यहां भी ठहर जाता, मगर उसे अपनी धर्मपत्नी का बहुत ख्याल था जो उसे बेहद प्यार करती थी।" यदि यह वास्तविकता थी तो सेठ को कोठे पर जाने की क्या आवश्यकता थी।

'सड़क के किनारे', 'फुंदने' और 'सुरमा' कहानियों का शिल्प शेष कहानियों से अलग तरह का है। मंटो अपनी बात को बेबाक और सीधे-सादे शब्दों में रखने का कायल है, पर इन कहानियों की टैकनीक अलग है। 'फुंदने' कहानी में वह गहरे प्रतीकों का प्रयोग करता है। कहानी में नारंगियां स्त्री के वक्ष की प्रतीक हैं। उनका जल्दी ही बड़े होना स्त्री का शीघ्र यौवन प्राप्त करना है और कुत्तों का भौंकना स्त्रियों पर अत्याचार का प्रतीक है। इस तरह यह कहानी प्रतीकों के माध्यम से विकसित होती है।

जैसा कि मंटो ने लिखा है—"यह भी हो सकता है कि सआदत हसन मर जाए और मंटो जिंदा रहे।" शत-प्रतिशत सच है। मंटो की कहानियां समय का साथ देती रहेंगी क्योंकि उसने ऐसे विषय को चुना है जो कभी पुराना नहीं हो सकता। मंटो हमारे बीच सदा जिंदा रहेगा।

मंटो तुम्हारे चरित्र अब मेरे हो गए हैं क्योंकि मैं तुम्हारा चरित्र हो गया हूं।

मंटो की कहानियां पढ़ने के बाद मैं उनमें कब तक खोया रहा कह नहीं सकता। उससे बाहर निकलने का न मन करता था और न ही रास्ता मिलता था।

देवेन्द्र इस्सर ने इन पुस्तकों के द्वारा उर्दू के चर्चित तथा विवादास्पद कथाकार को पाठकों के सामने रखा। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। □

"मंटो नामा": मूल्य: 150 रुपये, मंटो की श्रेष्ठ कहानियां: मूल्य: 75 रुपये, मंटो अदालत के कटघरे में: मूल्य 75 रुपये, मंटो की राजनीतिक कहानियां: मूल्य 45 रुपये, सम्पादक: देवेन्द्र इस्सर: प्रकाशक: इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर, दिल्ली-51

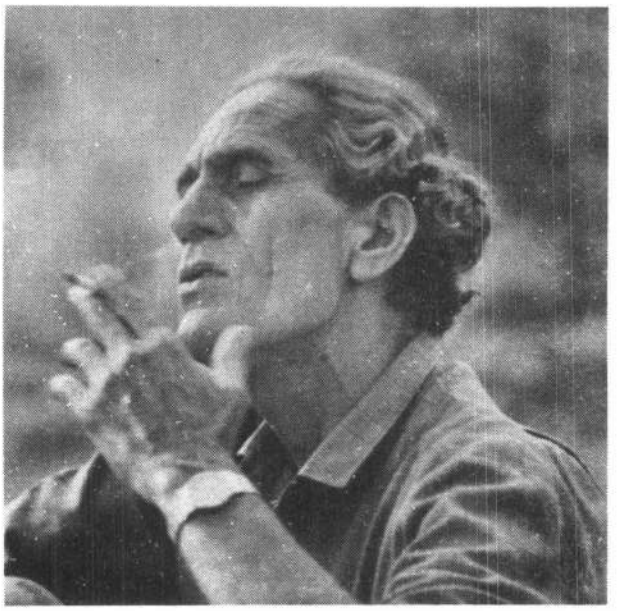
6/15, अशोक नगर,
नई दिल्ली-110018

'आजकल' मंगाने का पता

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

वार्षिक: 30.00 रु.
द्विवार्षिक: 54.00 रु.
त्रिवार्षिक: 72.00 रु.
चेक/बैंक ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डर व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग के नाम देय होना चाहिए।

मालरोड की एक बेंच पर बैठा, हथेली पर भांग की पत्तियों को सुखाते हुए, मैंने उसे टोका नहीं। मात्र देखता रहा और सोचता रहा, यह व्यक्ति जो थोड़ी-थोड़ी देर बाद इन पत्तियों को सूंघ भी रहा है, उनके बदलते रंग और ढंग को बारीकी से देख भी रहा है, यह भीतर से कहीं इन्हीं के साथ है। मेरे साथ नहीं। मेरे साथ होते हुए भी यह मुझे छोड़ बैठा है।



हथेली पर सूखती भांग की पत्तियां

डा. बलदेव वंशी

हां! बिल्कुल इतना-सा ही है इस लेखक का परिचय। यदि हथेली पर रखी ताजा भांग की पत्तियां लिए शिमला मालरोड स्थित पत्थर की बेंच पर कोई व्यक्ति अपने आस-पास सैलानियों की भीड़ से बेखबर रह सकता है, बल्कि पास बैठे हुए अपने अंतरंग की उपस्थिति से भी मुक्त हो सकता है तो उसका नाम है—बल्लभ डोभाल। वस्तुतः वह मसिजीवी से भी अधिक प्रकृति-जीवी है। वह प्रकृति वन्य-पर्वतीय है, जो उसे अपने में समेटती-लपेटती, बांधती और मुक्त करती है।

अपने जीवन के छप्पन वर्ष इस धरती पर, आज के काल और देश में जिया हुआ यह व्यक्ति जब भी हंसता है तो लगता है, एक निश्छल, अपने में बांधने वाले सरल बचपन को वह अपने में सुरक्षित रखे हुए है। उसमें समझदारी की, दुनियादारी की छौंक तक नहीं लगी, गंध तक नहीं व्यापी।...और यह सच है कि आज की तथाकथित समझदारी-दुनियादारी इस व्यक्ति के व्यवहार में कहीं खप नहीं सकी है। इन चीजों का बाहर जितना अभाव है उतना ही वह भीतर से मन की सादगी, सरलता और निश्छलता से संपन्न है।

मालरोड की एक बेंच पर बैठा, हथेली पर भांग की पत्तियों को सुखाते हुए, मैंने उसे टोका नहीं। मात्र देखता रहा और सोचता रहा, यह व्यक्ति जो थोड़ी-थोड़ी देर बाद इन पत्तियों को सूंघ भी रहा है, उनके बदलते रंग और ढंग को बारीकी से देख भी रहा है, यह भीतर से कहीं इन्हीं के साथ है। मेरे साथ नहीं। मेरे साथ होते हुए भी यह मुझे छोड़ बैठा है। जैसे शीला भाभी, तीन युवा लड़कों और एक लड़की वाले परिवार के साथ जीता हुआ भी उनसे कहीं दूर पहाड़ों, जंगलों, पहाड़ी गांवों और उन्हीं ग्रामीणों में रहता-बसता है। उससे मिलने-जानने वाला हर व्यक्ति उसे दिल्ली में मिले या धर्मशाला (हिमालय) में—मिलते ही पूछेगा—"कब आए?..." दिल्ली वालों को उसके आने में हैरानी होती है, तो धर्मशाला वालों को उसके जाने में।

गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) के पहाड़ों में 30 मार्च, 1933 में जन्मा यह व्यक्ति ठंड या बर्फीले तूफानों से नहीं घबराता, पर दिल्ली में गर्मियां शुरू होते ही उसकी रुह तड़पने लगती है। यह तड़प ज्यों-ज्यों बढ़ती है, वह भांग की पत्तियों की तरह कुम्हलाता-छटपटाता हुआ मिलता है।

"तुम धर्मेन्द्र मुंधा को जानते हो?" एक दिन अचानक वह मुझसे पूछता है।

"नहीं! कौन है वह?"

"अरे, बहुत बढ़िया आदमी है, गीत-कविताएं लिखता था। 'कादम्बिनी' वगैरह में छपती रहती हैं उसकी रचनाएं। अब कनाट प्लेस, अमरीकन लाइब्रेरी के सामने बस स्टाप के छज्जे के नीचे पड़ा मर रहा है।"

"उसका घर-परिवार?"...

"कोई नहीं! किसी को कुछ पता भी नहीं। एक समय वह बड़ा मस्त आदमी था। मंत्रियों के घरों में रहता रहा। कई महीने तो माडर्न स्कूल के प्रिंसिपल के घर रहा। कभी कहीं...कभी कहीं...। जब कभी वह पैसा पा जाता तो खुद पीता और मंत्री की कोठी के मालियों, नौकरों को भी खूब पिला देता। मेरा खूब परिचित था। ऐसी हालत में जब कभी वह मुझे देख लेता तो "कभी छोड़ता न था।"

"मिलवाओ यार ऐसे आदमी से।"

"हां, मिलेंगे। वह तो वहीं पड़ा रहता है। डालमिया ट्रस्ट से उसे दो कंबल दिलवा दिए थे। पता नहीं अब उसकी क्या हालत है?"

अपने इस परिचित के लिए बल्लभ के स्वर में दर्द और सहानुभूति पाकर मैं चुप हो रहा। फिर दूसरी बातें होती रहीं, किन्तु अगले ही दिन मुझे लेकर बल्लभ उधर से निकल पड़ा। देखा, सर्दियों की कड़ाकेदार ठंड...और खुले छज्जे के नीचे धर्मेन्द्र मुंधा ठंड से अकड़ा पड़ा है। उसमें पहचान तो है, किंतु प्राण आधे-पौने ही रह गए हैं। नीचे कुछ भी नहीं...नंगी फर्श, ऊपर एक चीथड़ा।...देखकर मन दुखी हुआ। बल्लभ ने निकट होकर बात की, हाल पूछा। फिर चाय-डबलरोटी लाकर उसे दी गई।

"यार! इसे अस्पताल क्यों न पहुंचा दें। इसे मरना ही है तो अस्पताल में बिस्तर पर मरे।"

मेरा सुझाव बल्लभ को पसंद आया। हम वहीं 'कादम्बिनी' के सम्पादक राजेन्द्र अवस्थी से मिले। अवस्थी ने सफदरजंग अस्पताल, मैडिकल सुपरिंटेंडेंट के नाम पत्र लिखा, जिसमें मुंधा के लेखक होने और इलाज की समुचित व्यवस्था का जिक्र किया गया था।

लेकिन मुंधा जाने को तैयार नहीं। किसी तरह बहला-फुसला कर हमने उसे तैयार किया, सहारा देकर टैक्सी में डाला। वह बू-बास गंदे कपड़े में लिपटा, किंतु निर्विकार! अपने में केन्द्रित...।कोई आह नहीं, कराह नहीं। इस हालत में भी शराब और सिगरेट की फरमाइश रखने वाला धर्मेन्द्र मुंधा...।

उसे दाखिल कराने की औपचारिकताएं पूरी कीं। झक्क चादरों के ढके पलंग पर भी वह वैसा ही निर्विकार! तब शराब लाने का बहाना करके ही हम वहां से निकल पाए।

इस बीच न जाने कैसे पांच-छः रोज निकल गए। फिर हम दोनों अस्पताल पहुंचे तो पाया कि मुंधा वहां से जा चुका है। नर्सें कहती हैं कि वह बड़ा ही अजीब आदमी था, सब पर हुकुम चलाता था। कहता था—मुझे अखबार लाकर दो! यह करो, वह करो! आखिर बिना छुट्टी लिए ही वह कहीं चला गया है। हम दोनों अस्पताल के आस-पास बस स्टापों के छज्जों पर उसे ढूंढते रहे। तभी ख्याल आया, कहीं वह अपनी पुरानी जगह पर न आ गया हो। कनाट प्लेस आकर देखा, मुंधा उसी छज्जे के नीचे आया पड़ा है। आसपास के पनवाड़ी, भंगी को पैसे देकर उसका मल उठवाते हैं, अपने पास से चाय-पानी का इंतजाम कर देते हैं।

अब की बार उसकी हालत बहुत खराब थी। आंखें मुंदी हुईं, क्षीण-सी चेतना शेष।...बल्लभ ने आगे बढ़कर उसकी कलाई पकड़ ली जो निसत्व-सी नीचे झूल गई। मैंने आवाजें दीं, उसने आंखें खोल कर एक बार देखा भर...फिर आंखें बंद। हमने तय किया, इसे तुरंत अस्पताल ले चलना चाहिए। फिर राजेन्द्र अवस्थी के पास गए। अवस्थी ने अपने विभाग के स्वामीशरण को हमारे साथ भेज दिया। ताकि उसे उठाकर अस्पताल पहुंचाया जा सके। मरते-गंदे आदमी को कोई टैक्सीवाला ले चलने को तैयार नहीं। आखिर एक स्कूटर में उसे लिटाया। वह पूरी तरह बेहोश और ठंडा...मात्र सांसें चल रही थीं। राम मनोहर लोहिया अस्पताल पहुंचने पर डाक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। अब!... विस्मय, दुःख और हैरानी भरा अब!...

डाक्टरों और पुलिस के तरह-तरह के शक्की-तहकीकाती प्रश्नों के घेरे में धमेन्द्र मुंधा के शव के साथ हम दोनों रह गए। अभी और भी समय लग सकता था। किसी एक को मुंधा के वारिस होने की जिम्मेदारी लेनी थी। अंततः बल्लभ ने सारा कुछ अपने ऊपर ले लिया, क्योंकि वह किसी प्रकार की नौकरी के बंधन में नहीं।

शव को डैड बाडी रूम में रखवा कर हम अपने अगले दिन पहुंचने की बात कहकर लौट आए। परन्तु रात को ही पुलिस बल्लभ के घर जा पहुंची। पुनः वही कुरेदिए प्रश्न, शक्की पुलिसिया मिजाज।...बल्लभ उन्हें लेकर कादम्बिनी के दफ्तर पहुंचा। वहां से कुछ पैसा इकट्ठा किया, कुछ अपने पास से डालकर कफन-सामग्री जुटाई गई। पुलिस को भी मृत्युभोज दिया गया। इस प्रकार विद्युत-शवदाह पर धमेन्द्र मुंधा का अंतिम संस्कार, पुलिस की देख-रेख में बल्लभ को ही करना पड़ा।

कई बार यह व्यक्ति मुझसे कह चुका है—"डा. बलदेव तुम्हें मालूम नहीं कि दिल्ली-बम्बई जैसे शहरों से मुझे कितनी ऊब हो चुकी है। कुछ ही लोग हैं जिनके लिए मुझे इस नरक में आना पड़ता है।"

"वे कौन लोग हैं?"

"देखो। दिल्ली में तो अपने श्रीपत जी हैं, तुम जानते हो?"

"हां, श्रीपतराय, मुंशी प्रेमचन्द के ज्येष्ठ पुत्र हैं।"

"अरे यार, बड़ा विचित्र आदमी है। निस्पृहभाव से लेखक, कलाकारों को आगे बढ़ाने वाला एक ही व्यक्ति है। मुझे इनका बहुत सहारा मिला है। एक बार कहने लगे, "बल्लभ! मेरे पास एक फिएट गाड़ी बेकार पड़ी है। तुम गाड़ी चलाना जानते हो तो इसे ले जाओ और अपना काम चलाओ।"

मैंने 'हां' कर दी। बस, कहने को 'हां' कह दिया। बात कहीं और घूम गई। सोचा, दुबारा फिर कहेंगे तो किसी तरह निकाल ले जाऊंगा और कबाड़ी के पास बेच डालूंगा। रोज-रोज का पैसा भरने की जगह कुछ पैसा हाथ लग जाएगा।

फिर एक बार श्रीपत जी ने बात की, पर गाड़ी चलाना मैं जानता नहीं था। उसी दिन शाम को कनाट प्लेस, हनुमान रोड पर ड्राइविंग सिखाने वाले के पास पहुंचा। साठ रुपये पेशगी भी दे

दिए। ट्रेनिंग शुरू हो गई। दो दिन में काफी सीख भी गया। तीसरे दिन बड़े आत्मविश्वास के साथ श्रीपत जी से मैंने कहा—"लाइए गाड़ी की चाबियां...आज मैं उसे ले जाऊंगा।"

श्रीपत जी को उस वक्त चाबियां नहीं मिलीं। बोले, "नौकर से तलाश करने को कहूंगा, कल से जाना। घर पहुंचा तो मां की बीमारी की चिट्ठी आई पड़ी थी। गढ़वाल (घर) चला गया। मां सख्त बीमार थी। महीने भर मां की सेवा की। कुछ ठीक हो जाने पर उसने मुझे दिल्ली लौट जाने को कहा। मां जानती थीं कि मैं हद दर्जे का लापरवाह हूं। इसलिए लौट आना पड़ा। उस दिन नहा-धो कर खाना खाया। सफर की थकान थी, सो गया। सोचा, अब जाकर गाड़ी निकाल लाऊंगा। किन्तु शाम को ही घर से टेलीग्राम आ गया कि मां का देहांत हो गया है। फिर गांव चला गया। एक महीने बाद लौट कर पुनः श्रीपत जी से मिला। मालूम पड़ा कि गाड़ी जा चुकी है। बोले, "कोई सज्जन उसे ले गए हैं। तुम आए नहीं, यहां उसने बेकार मे जगह घेर रखी थी।"

अब चलिए जरा बम्बई...कल्याण स्टेशन के आगे उल्हास नगर में ओंकारानंद आश्रम। बल्लभ को 'वैदिक होमात्मक अतिरुद्र यज्ञ' सम्बंधी आश्रम की पत्रिका निकालनी है। ऊपर की एकांत मंजिल में बल्लभ का आसन जमता है। देश-विदेश से आए भक्तों और संतों-महंतों का समागम है। महामण्डलेश्वर बड़ी इज्जत, प्यार और अपनत्व से उसकी देख-रेख के लिए अपने दो चेलों को लगा देते हैं। छपाई के सिलसिले में महामण्डलेश्वर की कार भी उपलब्ध है। सब तरह की सुविधाएं हैं। लेकिन बल्लभ चार दिन में ही उकता गया है। कारण?... बम्बई की भीड़-भाड़, बनावटी व्यवहार, परस्पर छल-छद्म, लूट-खसोट और अनाचार का महापुराण जैसे बांच लिया हो। यहां तो साक्षात् मरण है। बाबा लोगों ने जाना तो हैरान हुए। यहां किस चीज की कमी है? क्या परेशानी है?... इन प्रश्नों पर वह फिर हंसता है। बाबा लोगों को उसकी हंसी बड़ी मारक लगती है। ऐसी हंसी के कायल हो जाते हैं महामण्डलेश्वर। बड़े सहृदय, मानवीय दुर्लभ-गुणों के पारखी हैं वे। कुछ ताड़ जाते हैं। बल्लभ की बेचैनी में थोड़ा रास्ता बना लेते हैं। दुनिया भर में घूमे महामण्डलेश्वर उसे बम्बई के सागर तट पर घूमने की स्वतंत्रता दिए हुए हैं। ताकि वह कुछ समय और आश्रम में रह जाए और पुस्तक का काम पूरा कर सके।

एक रोज महामण्डलेश्वर के एक खास चेले को लेकर वह समुद्र के किनारे भ्रमण को निकल जाता है। समुद्र तट तो कई बार घूमा-देखा था, लेकिन आज मन में कुछ और ही खुरापात थी। व्हिस्की लेकर बैग में डाल ली और पानी वाले नारियल में थोड़ा-थोड़ा डालकर सिप करता घूमता रहा। पैरों तले समुद्र तट की गीली रेत...टकराती लहरें...सामने फैला हिन्द महासागर...ऊपर खुला असीम आकाश और भीतर उठती हल्की-हल्की नशीली लहरें।

"बाबा, लो तुम भी अपने नारियल में दो-चार बूंदें टॉनिक डलवा लो। कमजोर हो रहे हो।"

बाबा कुछ समझा और कुछ नासमझी में काम करवा लिया। नारियल में व्हिस्की डलवाकर पीता रहा। फिर दोनों उछाल भरती लहरों में देर तक नहाते हैं। बाबा कुछ ज्यादा ही मौज में हाथ-पैर मारता, तैरता, कूदता बार-बार किनारा छोड़ दूर जाने की कोशिश करता। लेकिन समुद्र की लहरें उसे अपने साथ किनारे पर ला फेंकतीं।

आश्रम में लौटे तो पाया कि महामण्डलेश्वर जी प्रतीक्षा में बैठे हैं। चेले को पास बुलाकर पूछा, "घूम आए?"

जीवन में पहली बार चेले ने अपनी सुर्ख चढ़ी हुई आंखें गुरु जी की आंखों में डाल कर जो उत्तर दिया, गुरु जी ने उस उत्तर को सुनने से ज्यादा तो अपनी आंखों से ही देख लिया था। हंसते हुए बल्लभ से बोले, "यार, तुमने बाबा लोगों को बिगाड़ दिया है।"

बल्लभ भी हंसता रहा। हंसते-हंसते ही कह दिया, "महाराज! ये बाबा लोग तो पहले से ही बिगड़े हुए हैं, इन्हें कोई क्या बिगाड़ेगा।"

सुना तो महामण्डलेश्वर खिलखिला कर हंस पड़े। इस हंसी में बाबा लोगों की ऊब, उल्हासनगर आश्रम और पूरी बम्बई ही जैसे हंसती दिखाई दी।

हिमाचल में अपर धर्मशाला, मकलोटगंज... मकलोटगंज से ऊपर भागसूनाग एक पुराना मंदिर...लोगों के कहे अनुसार लगभग तीन हजार वर्ष पुराना देवस्थान। मंदिर की बगल में चोरान खड्ड...जिसमें पिघले बर्फ का पानी बड़ी तेजी से चलता है। यहीं एक ओर पहाड़ पर स्लेट की पन्द्रह-बीस खानों में काम होता रहता है और एक बहुत ऊंचा जल-प्रपात है जिसकी आवाज से घाटी गूंजती रहती है। शाम संध्याकाल आरती के समय घंटे और दमामों की आवाजों के साथ प्रपात के स्वर मिलकर झुटपुटे अंधेरों को गम्भीर व भयानक रंगों में ढाल देते हैं, तब चोरान खड्ड की तरफ झांकना, मौत की खाई में झांकने जैसा लगता है।

यहीं तलहटी के पास एक डाक बंगला था। अब खंडहरनुमा अवशेष बचे हैं। मजदूर अथवा खच्चरों पर स्लेट ढोने वाले लोग खच्चरों सहित आज भी इस बंगले के आसपास आराम करते देखे जा सकते हैं। बूढ़ा रोगग्रस्त चिनार का पेड़ आज भी उस जर्जर बंगले पर अपनी रुग्ण छाया किए रहता है।

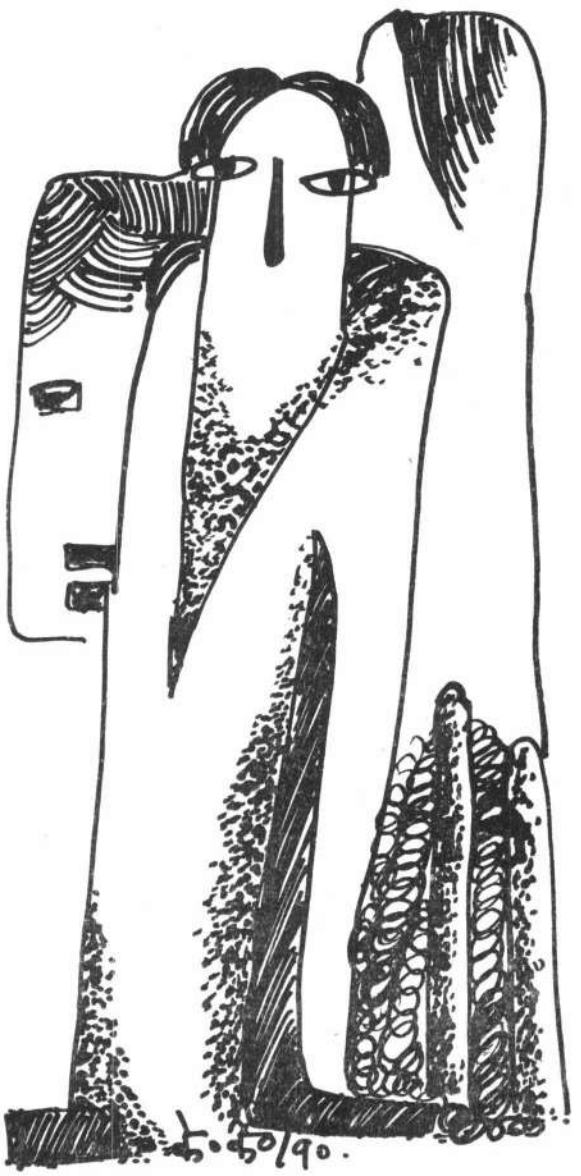
किन्तु आज से तीस वर्ष पूर्व बल्लभ इसी प्रदेश के अपने एक धनी मित्र के साथ उस बंगले को गुलजार किए हुए था। तब एकांत घाटी में अंधेरा होते ही बंदूक की आवाजें गूंज उठती थीं। रात-रात तक शिकार करना और पेड़ के नीचे बैठकर चांदनी रातों को गुजार देने का शौक आज भी बल्लभ को उधर खींच ले जाता है...।

मैं बल्लभ के साथ हूं। चोरान को लांघ कर हम उसी बंगले पर पहुंचते हैं। भीतर कई कोठे हैं, दीवारें ध्वस्त प्रायः हो चुकी हैं, कमरों के अन्दर अब घनी झाड़ियां उग आई हैं। ऊंची जगह पर यह बंगला बना था। बल्लभ सारी स्थितियां बताता है...इस झरोखे के पास हम बैठकबाजी किया करते थे.. उस कमरे की खिड़की से झरना साफ दिखाई पड़ता था...हमारे कई-कई संगीतमय गूंजते, धमाकेदार दिन और रंगीन नशीली रातें इस

(शेष पृष्ठ 48 पर)

अपना कन्धा अपनी लाश

दिलीप सिंह



मेरे दफ्तर में एक अफसर थे चक्रवर्ती। आज से छः वर्ष पहले जब वह नौकरी से मुक्त हुए तो मेरी नियुक्ति उनके स्थान पर हुई। उन्होंने नौकरी से मुक्त होने के बाद एक सरकारी कालोनी में छोटा-सा मकान बनाया जहां वह अपनी बूढ़ी मां के साथ रहने लगे। मेरी अक्सर उनसे फोन पर बातचीत होती रहती है। जब कभी कोई पुरानी फाइल न मिले तो मैं उन्हीं से पूछा करता हूं। कोई केस मेरी समझ में न आए तो मैं उनसे सलाह करता हूं। उन्हें भी अपनी पैन्शन के सिलसिले में अपने पुराने दफ्तर से कुछ कहना सुनना हो तो मुझे ही फोन करते हैं। आपसी हित के कारण हमारी अच्छी खासी दोस्ती हो गई है।

एक दिन उन्होंने मुझे फोन पर सूचना दी कि उनकी बूढ़ी मां का देहांत हो गया है। मैंने फौरन वह तमाम वाक्य जो ऐसे अवसर पर बोले जाते हैं, बोलने शुरू कर दिए। यानी उनके दुःख में मैं बराबर का शरीक हूं, "मां के साये से वंचित होकर जीवन की धूप सहन करना बहुत कठिन काम है। भगवान उन्हें स्वर्ग में जगह दे" आदि। उन्होंने मुझे टोकते हुए कहा—"यार जो कुछ तुम कह रहे हो वह अपनी जगह ठीक है लेकिन इस समय यह कहने का मौका नहीं है—मैंने फोन तुम्हें श्रद्धांजलि के शब्द सुनने के लिए नहीं किया, बल्कि सहायता प्राप्त करने के लिए किया है।"

मैंने कहा—"फरमाइए।"

कहने लगे—"यार दफ्तर से तीन चार क्लर्क भेज दो, माताजी को शमशान ले जाना है।"

मैं उनकी प्रार्थना सुनकर चकरा गया। जब जरा संभला तो कहा—"सर मरने वाले को शमशान ले जाने के लिए तो आमतौर पर रिश्तेदार काम में लाए जाते हैं।"

कहने लगे—"जानता हूं—लेकिन दिल्ली में मेरा कोई रिश्तेदार नहीं है।"

"और पड़ौसी?" मैंने पूछा।

कहने लगे "माता जी कुछ ऐसे बे-वक्त परलोक सिधारीं कि सब पड़ौसी दफ्तर के लिए निकल चुके हैं। इस समय पूरी कालोनी में मैं अकेला पुरुष हूं और मां को शमशान ले जाने के लिए कम से कम चार पुरुषों की आवश्यकता है। इसलिए तुम से प्रार्थना कर रहा हूं। यूं तो मां का वजन इतना कम है कि मैं अकेला भी उन्हें उठा कर ले जा सकता हूं, लेकिन इस तरह पहले कोई लाश शमशान ले जाई नहीं गई। इसलिए शायद उचित न लगे।"

मैंने क्लर्क भेज कर चक्रवर्ती साहब का काम करवा दिया। लेकिन मेरे दिल में एक ख्याल-सा बैठ गया कि जब हमारा शमशान जाने का समय आएगा और अगर किसी कारण क्लर्क न मिले तो हमारी लाश शमशान कैसे पहुंचेगी।

मैंने जब चक्रवर्ती साहब से इस समस्या पर बात की तो कहने लगे—"बदलती हुई परिस्थितियों में तुम्हें स्वयं चलकर शमशान जाना होगा।"

मैंने कहा—"मुर्दे का स्वयं चल कर शमशान जाना कुछ असंभव-सा लग रहा है।"

कहने लगे—"इसलिए लग रहा है कि इस समस्या पर पूरी तरह विचार नहीं किया गया। विचार करोगे तो कोई न कोई समाधान निकल आएगा। जमाना बदल रहा है भैया। यह सैल्फ सर्विस अर्थात् स्वयं करने का जमाना है। होटलों में ग्राहक स्वयं अपनी प्लेटों में खाना डाल कर खा रहे हैं। लोग अपने घरों में खुद ही नल खराब कर रहे हैं और खुद ही ठीक कर रहे हैं। लड़के तो लड़के, लड़कियां भी अपने वर स्वयं तलाश कर रही हैं, तो मुर्दा शमशान तक स्वयं क्यों नहीं जा सकता। मुझे तो अफसोस है कि यह हमारे जमाने में न हुआ। मैंने हैरान होकर पूछा—"क्या आप कई साल पहले शमशान जाने की सोच रहे थे।" कहने लगे मैं शमशान जाने की नहीं, रिश्ता ढूंढने की बात कर रहा हूं। देखिए न हमारे जमाने में रिश्ता ढूंढना माता-पिता का काम था। चूंकि मेरे माता-पिता यह फर्ज निभाने में अयोग्य सिद्ध हुए, इसलिए मैं कुंवारा रह गया।

मैंने कहा "चक्रवर्ती साहब रिश्ते की बात तो इस समय न छेड़िए कि आप उम्र की जिस मंजिल पर हैं, रिश्ते की बात बेवक्त की रागनी सुनाई देती है। अब तो आप अपने मुर्दे को शमशान पहुंचाने की चिंता कीजिए।" कहने लगे—"मैं तो कर ही रहा हूं—आप भी इधर ध्यान दीजिए वर्ना आपका मुर्दा घर में ही पड़ा रह जाएगा और आप हाथ मलते रह जाएंगे।"

मैंने बहुत ध्यान दिया लेकिन बात मेरी समझ में नहीं आई कि अपने मुर्दे को स्वयं शमशान कैसे पहुंचाया जा सकता है। किसी ने मशवरा दिया कि जब आप को यमराज दिखाई देने लगे, शमशान की ओर भाग पड़िए। इस सुझाव में मुझे कठिनाई यह नजर आई कि यमराज पुलिस का इंस्पैक्टर तो है नहीं कि आप ने कहा—"श्रीमान जरा-सी मोहलत दीजिए, मैं कपड़े बदल कर आपके साथ चलता हूं।" आम तौर पर वह मान जाता है और अगर न माने तो उसे मनाने का एक ऐसा नुस्खा है जो सब को मालूम है। लेकिन यमराज तो कहते हैं एक सैकिंड की मोहलत भी नहीं देते।

किसी ने मशवरा दिया—"शमशान वालों से बात करो, वह जरूर कोई रास्ता बता देंगे।"

मैं जब शमशान पहुंचा तो वहां एक कोने में चार-पांच पंडे सुलफा पी रहे थे। बाकी शमशान में शमशान की-सी खामोशी थी।

मैंने अपनी समस्या व्यक्त की—"मैं अपने कन्धों पर सवार होकर शमशान पहुंचना चाहता हूं, कोई उपाय बता दीजिए।" एक पंडे ने पूछा—"आपकी मृत्यु कब तक संभव हो सकती है।" मैंने कहा मौत का क्या है किसी समय भी आ सकती है—शायद कल ही आ जाए। कहने लगा—"अगर यह बात है तो अपने क्रियाकर्म का खर्च हमारे पास जमा करा दीजिए और रात यहीं शमशान में हमारे साथ व्यतीत कीजिए। कल भगवान की दया से आप का क्रियाकर्म इस प्रकार करेंगे कि आप को कोई शिकायत नहीं होगी। मैंने पूछा—"कितना खर्च?" कहने लगा—"यह तो आप पर निर्भर है। क्रियाकर्म पांच सौ रुपये में भी हो सकता है और पांच हजार में भी। केवल इतना याद रखिए कि जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा।"

मुझे यह उदाहरण कुछ उचित-सा लगा। लेकिन उस समय साहित्य की समस्याओं पर बहस करने का मेरा कोई इरादा नहीं था। मैंने पूछा—"अगर मेरी मृत्यु कल तक न हुई तो ?" कहने लगा—"एक आध दिन और सबर कर लेंगे। लेकिन इससे ज्यादा नहीं। यह शमशान है कोई धर्मशाला नहीं है।"

मैंने कहा—"आप गलत समझे। मेरा इरादा शमशान में पड़े रहने का बिल्कुल नहीं है। मेरा तो मतलब केवल इतना है कि मुझे अपने क्रियाकर्म में किसी का आभारी न होना पड़े। ऐसा लगना चाहिए जैसे मैं अपनी अर्थी अपने कन्धों पर उठाकर लाया हूं। मैंने ही अपनी चिता को अग्नि दी है। मैंने ही मंत्र पढ़े हैं। मैंने ही अपनी मृत्यु पर आंसू बहाए हैं और मैं ही अपने फूल गंगा जी में बहाकर आया हूं।

एक और पंडा सुलफे के नशे से एक मिनट के लिए उभरा और कहने लगा—"मैं आप का अर्थ समझ गया हूं। आप सैल्फ सर्विस फ़यूनरल चाहते हैं जैसे कि आजकल अमरीका में हो रहा है।"

मैंने पूछा—"महंत जी आप कभी अमरीका गए हैं?"

कहने लगा—"गया हूं तभी तो जानता हूं।"

मैंने पूछा—"किस सम्बन्ध में गए थे?"

कहने लगा—"मुर्दा ही जलाने गया था, कोई कम्प्यूटर बनाने थोड़े ही गया था। कोई अमीर हिन्दुस्तानी वहां मर गया था। उसकी इच्छा थी कि जब वह स्वर्गवासी हो तो कोई भारतीय पंडा ही उसका क्रियाकर्म करे। इसलिए टिकट भेज कर मुझे बुलवाया गया। वहीं मुझे पता चला कि अमरीका में आजकल सैल्फ सर्विस फ़यूनरल का रिवाज चल पड़ा है। होता इसमें यूं है कि मरने वाला क्रियाकर्म की फर्म में एक निश्चित राशि जमा करवा देता है। उसके मरने के बाद फर्म वाले उसकी क्रियाकर्म की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेते हैं। शव के लिए लट्ठा वह लाएंगे, लकड़ियों का प्रबन्ध वह करेंगे, मृतक का गुणगान करने वाले भाषण वह लिखवाएंगे, वही पढ़वाएंगे, घी और सामग्री आदि का प्रबन्ध भी वही करेंगे। आप अपने लिए कुछ इस प्रकार का प्रबन्ध करने की तो नहीं सोच रहे?"

"बिल्कुल यही सोच रहा हूं। क्या यहां कोई ऐसी फर्म है?"

"फर्म तो शायद नहीं है लेकिन फर्म खोलने में कौन-सी देर लगती है। मुर्दे तो हमने बहुत जलाए हैं लेकिन मुर्दे जलाने का बिजनेस आज तक नहीं किया। अब यह भी कर देखते हैं।"

मैंने पूछा—"खर्च क्या होगा?"

कहने लगा—"पांच हजार रुपए जमा करवा दीजिए, आप पहले ग्राहक हैं—बोहनी के समय में अधिक नहीं मांगूंगा।"

मैंने पूछा—"पांच हजार रुपए में क्या-क्या होगा?"

कहने लगा—"आप के शव को यहां तक लाना, लट्ठा खरीदना, शव पर एक कीमती शाल डालना, जलाने के लिए लकड़ी खरीदना, रोने और बैन करने के लिए महिलाओं का प्रबन्ध करना और जलाने के बाद आपसे सम्बन्धित एक भाषण...आदि।

मैंने कहा—"रोने पीटने के लिए पराई स्त्रियां कुछ अच्छी नहीं लगेंगी।"

कहने लगे—"नहीं साहब यह आपकी गलतफहमी है—आपकी पत्नी आप से लाख प्रेम करे लेकिन श्रीदेवी की तरह प्रेम प्रदर्शन नहीं कर सकती। अपनी स्त्रियों में वह सुर ताल कहां जो किराए की औरतों में होगा। हम जो औरतें आप का बैन करने के लिए लाएंगे वह बैन करेंगी तो आप को यूं लगेगा जैसे राग केदारा गाया जा रहा है। छाती पीटेंगी तो कुछ इस तरह लगेगा जैसे तबले पर तीन ताल बज रहा हो। और सब से बड़ी बात यह है कि शक्ल व सूरत ऐसी होगी कि वह बिल्कुल रिश्तेदार औरतें लगेंगी।

मैंने सोचा तो पांच हजार का खर्च मुझे कुछ अधिक नहीं लगा।

मैंने कहा—"ठीक है मुझे सौदा स्वीकार है। लेकिन यह बताइए आप मालूम कैसे करेंगे कि मैं मर गया हूं।"

कहने लगा—"साहब जब बिजनेस खोला है तो काम तो करना ही पड़ेगा। हर रोज मेरा आदमी आप के घर जाकर देख आया करेगा कि आप की जिन्दगी का चिराग गुल हो गया है या नहीं।"

अतः उसका आदमी नियमित रूप से सवेरे आकर मुझे देख जाता था। इस तरह पन्द्रह दिन गुजर गए। एक दिन नौकर की जगह पंडा स्वयं आया। उस समय मैं योगा कर रहा था। पंडा पूछने लगा—"कहिए जनाब क्या हाल है।"

मैंने कहा—"भगवान की कृपा है।"

कहने लगा—"आप पर तो भगवान की कृपा है लेकिन हमारा दिवाला पिट रहा है।"

मैंने पूछा—"कैसे?"

कहने लगा—"कुछ आपको पता है लट्ठा कितना महंगा हो रहा है?"

"लट्ठे से मेरी मृत्यु का क्या सम्बन्ध?"

"आप की लाश को लपेटना नहीं है लट्ठे से क्या? लकड़ी दिन प्रतिदिन महंगी होती जा रही है। घी कल तक छियानवे रुपए किलो था, आज सौ रुपए किलो हो गया है। महंगाई आसमान को छू रही है और आप हैं कि जिये चले जा रहे हैं।"

"अब यह तो हो नहीं सकता कि मैं आत्महत्या कर लूं।"

"आत्महत्या न करें लेकिन यह योगा वोगा तो बंद करिए। आप तो भगवान के काम में रुकावट डाल रहे हैं।"

हमारी दोनों की आपस में खूब तू-तू मैं-मैं हुई। वह कहता था कि अगर मरना ही नहीं है तो फिर क्रियाकर्म बुक ही क्यों किया। मैं कहता था—"आप ने मेरे शव को ठिकाने लगाने का ठेका लिया है। मृत्यु से पहले आप मुझे हाथ नहीं लगा सकते।"

संक्षेप में बस इतना ही कि मैं जीता चला गया। और लकड़ी, घी, लट्ठा, रोने पीटने वाली औरतों का भाव बढ़ता गया। एक दिन पंडे जी आए तो चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। लगभग रोते हुए पूछा—"तबीयत कैसी है?"

उन्होंने जेब से पांच हजार रुपए निकाले और मेरे मुंह पर मारते हुए कहा—"यह लीजिए अपने पैसे—आज की कीमतों के हिसाब से तो इस में एक लावारिस लाश भी जलाई नहीं जा सकती। हमें नहीं करना घाटे का बिजनेस। स्वयं ही चले जाना शमशान। स्वयं ही लकड़ियां खरीदना और अपने आप जला लेना। और अगर संभव हो तो जल जाने के बाद स्वयं ही शान्ति पाठ कर लेना। □

59/4 राजेन्द्र नगर
नई दिल्ली-110060

लोक सभा सचिवालय

प्रतिष्ठित संसदविदों पर विनिबन्ध

प्रतिष्ठित संसदविदों पर विनिबन्ध की नई श्रृंखला आरम्भ करते हुए, लोक सभा सचिवालय जिन प्रतिष्ठित संसदविदों पर विनिबन्धों के प्रकाशन की घोषणा करता है, उनके नाम हैं—(1) डा. राम मनोहर लोहिया (2) डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी (3) डा. लंका सुन्दरम (4) श्री भूपेश गुप्त (5) डा. राजेन्द्र प्रसाद (6) श्री पी. गोविन्द मेनन (7) शेख मोहम्मद अब्दुल्ला (8) पंडित नीलकंठ दास (9) डा. बी.आर. आम्बेडकर।

विनिबन्धों में उनके जीवनवृत्त, उपलब्धियों, उनके द्वारा लोक सभा और राज्य सभा में दिए गए चुनींदा भाषण और उनके जीवन और कार्यों के बारे में सृजित लेख भी सम्मिलित किए गए हैं।

मूल्य : हिन्दी 30 रुपये; अंग्रेजी 50 रुपये।

बिक्री शाखा, लोक सभा सचिवालय, संसदीय सौध, नई दिल्ली-110001
तथा उनके प्राधिकृत बिक्री एजेंटों से उपलब्ध (दूरभाष : 695495, 695726)

आत्मकथा

मुश्ताक मोमिन

आज मेरा मूड बहुत अच्छा है। और आज ही मैं अनुभव कर रहा हूं कि फूलों की सुगंध और पत्तों की हरियाली वापस धरती में जज्ब हो रही है। शायद इसीलिए तितलियां और सुन्दर पक्षी भी दिखाई नहीं दे रहे हैं या फिर हम उन्हें देखने के अभ्यस्त नहीं रहे हैं! हम लोग अधिकतर भीतरी दुनिया में खोए रहते हैं जबकि हमें बाहरी दुनिया की खबर भी रखनी चाहिए! मुझे लगता है वातावरण में आक्सीजन का प्रमाण धीरे-धीरे कम होता जा रहा है, सब कुछ बड़ा विचित्र है। गदले प्रकाश में हर वस्तु अपनी वास्तविकता को छिपा रही है और हमें इसका एहसास भी नहीं होता। अब देखिए मेरे सामने एक दुबला-पतला आदमी कचरा एक जगह जमा कर रहा है—खाली पैकेट्स, चूसे हुए छिलके, बालों के गुच्छे और पानी।

सब मिल-जुल कर एक विचित्र कुरूप रूप धारण कर रहे हैं। उससे बचने के लिए मैं दूसरी ओर देखता हूं तो नजर आता है कि आदमी पोस्ट लैम्प की बत्तियां बुझांता चला आ रहा है।

फिर गंदगी जमा करने वाला और बत्तियां बुझाने वाला दोनों मिल जाते हैं, आपस में बातें करते हैं। हंसते हैं और एक-दूसरे के गले में हाथ डाले उस ओर मुड़ जाते हैं जहां भैंस और गाए एक पंक्ति में रस्सियों में बंधी हुई हैं। एक हृष्ट-पुष्ट ग्वाला गाय के थनों को निरंतर जोर लगा कर खींच रहा है। परन्तु दूध थनों में नहीं आ रहा है क्योंकि गाय ने दूध खींच लिया है, ग्वाला खड़ा गाय को मार रहा है। मां बहन की गालियां बक रहा है परन्तु निरर्थक!

फिर एक शक्तिशाली आदमी खड़ा होता है, उसके माथे पर तिलक और गले में माला है। वह गाय के बछड़े को गाय के सामने



रख देता है। बछड़े की खाल में से सूखी-सूखी घास जगह-जगह से निकली हुई है, गाय बच्चे को प्रेम भरी दृष्टि से देखती है। जीभ बाहर निकाल कर उसे चाटती है और थनों में दूध छोड़ देती है। सन-सन-सन दूध की पहली धार बर्तन में गिरती है। दूध दोहने वाला मुस्काता है और ऊपर नीचे उसके हाथ तेजी से चलने लगते हैं।

फिर उस दृश्य के सामने एक जीप आ जाती है। एक आदमी नीचे उतरता है। उसके बालों पर धूल जमीं हुई है और सुर्ख मिट्टी जीप के पहियों में फंसी हुई है और पिछली सीट पर कोई वस्तु काले कपड़ों में ढकी हुई है। मिट्टी से अटे खुर दिखाई देते हैं। शिकार किया हुआ हिरन है। हिरन का मांस नरम और स्वादिष्ट होता है और अचानक मुझे अनुभव होता है कि मेरा पेट खाली है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मूड को अच्छा रखने के लिए पेट भरना आवश्यक है।

नाश्ता करने के बाद मैं दौबारा फुटपाथ पर आ जाता हूं और जीभ मुंह में घुमा कर दांतों में अटका मांस का टुकड़ा निकालने का प्रयत्न करता हूं और दूर देखने की कोशिश करता हूं।

उसी समय भागते हुए लोगों और चकराते हुए पहियों के बीच से एक चीख उठती है। एक नवयुवक अपनी दोनों हथेलियों को टेके पूरी शक्ति से उठने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु उठ नहीं पाता। क्योंकि अभी उस का खून गरम है इसलिए उसे पता नहीं कि उसके धड़ पर से डबल डेकर बस गुजर चुकी है और उसकी कमर का निचला भाग कोलतार की सड़क से चिपक गया है। उसके बाद कुछ नजर नहीं आता क्योंकि बीच में दो बार टांगे और पहिए आ जाते हैं। जरा हंगामा होता है। आसपास की इमारतों से लोग आधे लटके झांकते नजर आते हैं। फिर सड़क पर फैला खून पूरी तरह सूखता भी नहीं कि यातायात दोबारा आरंभ हो जाता है।

"भाई साहब आप कहां जा रहे हैं?" कोई उत्तर नहीं।

"भैया जरा सुनेंगे?" दो आंखें मुझे घूरती चली जाती हैं।

"एक बात सुनिए। तुमने देखा वहां खून पूरी तरह सूखा नहीं है," एक हल्का-सा धक्का और वाक्य।

"पागल है कोई।"

"हजरत आपको मालूम है?"

"आप जानते हैं कि...?"

"हां मैं सब जानता हूं।"

अजीब अफरातफरी की स्थिति है। कोई संकट आ गया है या आने वाला है। डरे और सहमें हुए भयभीत लोग...ऊंह...मैं अपनी घड़ी की और देखता हूं अभी मेरे पास काफी समय है। कहीं और समय बिताने से अच्छा है भागती हुई इस भीड़ के दायरे से बाहर निकलने का प्रयत्न किया जाए...यह जीना भी कोई जीना है?

मैं भागती हुई उस भीड़ से स्वयं को धीरे-धीरे पृथक करके और हर वस्तु को ध्यान से देखते हुए विपरीत दिशा में आगे बढ़ जाता हूं! थोड़ी दूर तक चलने के बाद मुझे एक विचित्र-सी दुर्गन्ध का अहसास होता है...यह दुर्गन्ध...सूं सूं करके सूंघने का प्रयत्न करता हूं...कहां से आ रही है कोई चीज नजर नहीं आती...परन्तु निरंतर अपने अस्तित्व का एहसास दिलाए जा रही है। विचित्र-सी गंध है इसे कोई नाम भी नहीं दिया जा सकता। एक जगह दीवार पर बहुत से कौव्वे बैठे नजर आते हैं। उनकी नजरें और चोंचें एक विशिष्ट कोने से झुकी हुई हैं। फिर मेरे देखते ही देखते एक और कौव्वा आ बैठता है उसकी चोंच में मांस का एक छोटा-सा टुकड़ा है। अपने-अपने में खोए लोग उसी तरह भागे जा रहे हैं और गंध जिसको कोई नाम नहीं दिया जा सकता निरंतर आ रही है। और फिर मुझे वह नजर आ जाता है।

वह लड़का जो फुटपाथ पर टेक लगाए आंखें बंद किए पड़ा है दूर से ही पता चलता है कि वह घायल है। कंधे से लेकर कमर तक उसकी चमड़ी छिली हुई है। जैसे किसी ने निपुणता से उसकी खाल उधेड़ दी हो। लाल-लाल मांस पर मक्खियां भनभना रही हैं...एक और कौव्वा झपाटा मारता है और उसका मांस नोच कर उड़ जाता है। लड़के का शरीर एक क्षण के लिए झुरझुरी लेता है। फिर सामान्य हो जाता है। बोटी कव्वे के पंजे में फड़क रही है और कौव्वा दाएं-बाएं देखते हुए उस पर जल्दी-जल्दी ठोंगें मार रहा है। और मैं विवशता से खड़ा उसे देख रहा हूं। मुझे खड़ा देखकर एक आदमी रुक जाता है। च...च...च...बड़ा खराब जमाना आ गया है। वह मुझसे संबोधित है, ये साले इस तरह नहीं मानने वाले।

अटैची नीचे रखकर वह कुछ ढूंढने लगता है और फिर पत्थर उठा कर खटाखट कौव्वों को मारने लगता है। कौव्वे कन्नी काटते हुए कांय-कांय करते उड़ जाते हैं।

"देखा" वह गर्व से मेरी ओर देखता है और हाथ साफ करके अटेची उठा कर लम्बे-लम्बे डग भरता मेरे सामने से गुजर जाता है कौव्वे फिर आ जाते हैं।

मैं उस लड़के के समीप जाता हूं तो पता चलता है वह जीवित है अभी मरा नहीं। उसकी श्वास बहुत धीरे-धीरे चल रही है। परन्तु आंखों में जीवन की ज्योति शेष है।

"इसे बचाना चाहिए वरना मर जाएगा।"

"हां इसे बचाना चाहिए वरना सचमुच खत्म हो जाएगा।" दो तीन स्वर और उभरते हैं।

"परन्तु कैसे इसे बचाया जाए?"

"हां यह बात भी सोचने योग्य है कि इसे कैसे बचाया जाए", कई स्वर उभरते हैं।

"इसे दवाखाने ले जाना चाहिए...अभी और इसी वक्त..."

"नहीं पहले पुलिस को बुलाना चाहिए।"

"कौन जाएगा पुलिस को बुलाने?"

"भई पुलिस को मत बुलाओ पहले इसे अस्पताल ले जाओ... अभी और इसी वक्त। वरना यह मर जाएगा।"

"कौन ले जाएगा इसे अस्पताल।"

स्वर दूर होते जाते हैं।

प्राइवेट कारें, टैक्सी, घोड़ागाड़ी सब मौजूद हैं। और मुझे सवारी नहीं मिलती। बहुत देर के बाद एक टैक्सी रुकती है। ड्राइवर के हाथ स्ट्रांग हैं और उसकी आंखें हेड लाइट।

आप जरा मेरी सहायता करें—इसे दवाखाने ले जाना है, मैं ड्राइवर से विनती करता हूं। ड्राइवर पहले मुझे शंकालू दृष्टि से घूरता है फिर घृणा से लड़के की ओर देखता है और यांत्रिक स्वर में मुझसे संबोधित होता है।

"मेरी ड्यूटी बदलने वाली है साहब। आप कोई दूसरी टैक्सी देखिए...वैसे भी मुझे अपनी टैक्सी गंदी नहीं करनी है।"

उसकी बातें सुनकर मुझे क्रोध आता है फिर मेरा खून खौलने लगता है और उसके बाद मैं शांत हो जाता हूं...बात भी सही है पहले मुझे उसकी गंदगी और खून साफ करना चाहिए ताकि दुर्गंध दूर हो...वरना उसका इलाज कैसे होगा?

एक तरकीब मस्तिष्क में आती है। फिर मैं कहीं से पोलीथीन की थैली का प्रबंध करता हूं और उसमें लड़के को अच्छी तरह लपेट कर उसे गोद में उठा कर उस परिचित ऊंची इमारत की ओर बढ़ता हूं जिस पर चार राकेट आकाश की ओर सिर उठाए खड़े हैं। बड़े दरवाजे पर ताला पड़ा है और सीढ़ियों पर दो तीन आदमी बैठे बातें कर रहे हैं।

"जुमा के दिन स्नान करना और करवाना पुण्य का काम है।"

"मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो जाता हूं।

"माफ करो बाबा आगे जाओ।"

"मैं भीख नहीं मांग रहा हूं आपसे" मैं बच्चे को उनके सामने करते हुए कहता हूं।

"हां इसीलिए तो मुझे भीतर जाना है। हौज के पानी से इसके घाव धोना चाहता हूं।"

"तुम्हें इससे घिन नहीं आती? तुम अपवित्र हो भीतर नहीं जा सकते।" तीसरा आदमी कहता है।

"मजबूरी है मियां देखते नहीं दरवाजे पर ताला लगा हुआ है और यह ताला उस समय खुलेगा जब सूरज सिर पर आ जाएगा..." उनमें से एक मुझे समझाते हुए कहता है। वैसे तुम्हें इसका इलाज ही करवाना है तो किसी डाक्टर के पास जाओ...वह उसके घावों को धोकर साफ भी कर देगा और..."

लड़का धीरे-धीरे कराहता है। वे तीनों फिर आपस में बातें करने लगते हैं। मैं विवशता से भीतर झांकता हूं हौज के पानी का प्रतिबिंब दीवार में लगे फ्रेम पर पड़ रहा है जिस पर मोटे शब्दों में लिखा है—

"आपको नमाज के लिए फुरसत नहीं है? ताजुब है।"

"डाक्टर कहां मिलेगा?" एक आदमी जो बिल्कुल फ्रेम के नीचे बैठा है मैं उससे पूछता हूं। वह एक ओर संकेत करता है और कहता है "जल्दी जाओ वरना डाक्टर चला जाएगा।"

"मैं इस संबंध में तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता," डाक्टर मुझसे कहता है।

"क्यों?"

"आप दोनों में कोई रिश्ता नहीं है आपको यह भी नहीं मालूम कि इसकी यह हालत किसने की है। यह मेरा केस नहीं है..." अपनी बात पूरी किए बिना डाक्टर ठंडे स्वर में मुझ से संबोधित है।

"तो फिर यह किसका केस है?" मैं सोच से कहता हूं।

"यह पुलिस केस है।" डाक्टर इत्मीनान से उत्तर देता है और बच्चे की नाड़ी पर हाथ रखकर फिर कहता है...

"तुम एक काम करो...यहां से सीधे चले जाओ...

रास्ते में तुम्हें एक बोर्ड दिखाई देगा 'कैजुअल्टी डे एण्ड नाईट' वहां जाओ और अपना केस दर्ज कराओ और देखो टैक्सी वैक्सी के चक्कर में मत पड़ना...दस पंद्रह मिनट का रास्ता है पैदल ही निकल लो...समय जरूर लगेगा परन्तु इसके इलावा कोई रास्ता नहीं है। मुझे समझाकर वह रोगियों को देखने लगता है। फुटपाथ पर आने के बाद मैं सोचता हूं 'कैजुअल्टी डे एण्ड नाईट' ठीक है वहीं चलते हैं।

क्या होगा वहां? इसका कैसे इलाज होगा? और कैसे पता चलेगा कि...पुलिस स्टेशन अस्पताल और कोई...

आरोप पूछताछ-गवाही और गिरफ्तारी।

मेरे रोंगटे खड़े होने लगते हैं। मैं चौंक पड़ता हूं काफी समय लग जाएगा इसमें तो... डाक्टर भी यही कहता है वक्त लगेगा इसमें। एक घंटा दो घंटे या फिर पूरा दिन। इस समय साढ़े दस बजे हैं...और ग्यारह बजे...अचानक मुझे कुछ याद आता है.. ग्यारह बजे तो किसी भी हालत में मुझे वहां पहुंचना है वरना सारा खेल-बिगड़ जाएगा...उमर भर की मेहनत बेकार जाएगी। एक क्षण में मुझ से संबंधित सभी लोगों के चेहरे मेरी नजरों के सामने आने लगते हैं।

परंतु प्रश्न यह उठता है आज ऐसा क्यों हुआ? शायद इसलिए कि मूड अच्छा था और समय भी काफी था।

परन्तु इतना गंभीर होने की क्या जरूरत थी कि समय के परिवर्तन का एहसास ही न हो।

अब भय यह है कि केवल आधे घंटे का समय है और यह घायल बच्चा मेरी गोद में है और मुझे किसी भी सूरत में वहां पहुंचना है।

सामने सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। मेरे पास से गुजरते लोग मुझे यूं देखते हैं जैसे मैं फर्स्ट क्लास इडियट हूं।

फिर मैं घायल बच्चे को देखता हूं तो मेरा मूड आफ हो जाता है। फिर उससे मुक्ति पाने के लिए मैं उसे फूर्ती से फुटपाथ पर डाल देता हूं और तेजी से दौड़ कर चलती हुई एक बस में लटक जाता हूं। कंडक्टर ने पहले ही डबल घंटी बजा दी है। बस स्टाप पर बस रुकने का प्रश्न ही नहीं है। □

उर्दू से अनुवाद
एम. मुबीन
214, न्यू गौरी पाडा,
भिवंडी-421302 जिला-ठाणे (महा.)



नए नन्हें कपड़े

हेमन्त कुकरेती

छोटे-छोटे जुराब
और रंग-बिरंगी ऊन से
नन्हीं सी स्वेटर बुनने के बाद
वह सिल रही है
नन्हा सा संसार
अपनी ही बात पर
सिर हिलाती वह
तेरह साल की हुई जा रही है
पृथ्वी के धागों का
सबसे सही
उपयोग होने जा रहा है
उसे जरूरत नहीं है
नाप लेने की
आज तक किसी ने
जन्म लेते ही
कपड़ों की शिकायत नहीं की
वह जानती है
वह खूब रोएगा
पर कपड़ों को लेकर नहीं
उन कपड़ों को
आकाश भी पहन सकता है
उसके बाद भी
इतनी गुंजाइश है कि
धरती भी
ओढ़ सकती है
छोटे-छोटे जुराब
नन्हीं-नन्हीं स्वेटर की गरमी। □

23, जी. एल. बिल्डिंग
रबुबर पुरा-I, गांधी नगर
दिल्ली-110031

यह अपरिचित भावना क्यों

स्वराज्य 'शुचि'

यह अपरिचित भावना क्यों
प्राण मेरे बेधती है
आज अन्तर दृष्टि मेरी
बाट किसकी जोहती है

संवेदनाओं का एक प्रहरी
द्वार मेरे आज आया
नींद गहरी सो रही थी
स्वप्न में किसने जगाया

यह प्रतीक्षित भावना क्यों
उन्मादनी सी डोलती है
गीत अधरों पर सजाए
प्राण में रस घोलती है

जन्म-जन्मों से प्यासी धरा है
आँधियां ले नभ खड़ा
पीर अन्तस में छुपाए
आज मन मेरा खड़ा है

यह तड़पती भावना क्यों
आग से अब खेलती है
यह समर्पित भावना क्यों
भेद मन का खोलती है

आज फिर घिरने लगे हैं
आंसुओं के मेघ काले
भावना अपराधिनी का
बोझ मन कैसे सम्भाले।

यह व्यथित भावना फिर
तार वीणा छेड़ती है
यामिनी को दें विदाई
प्रभात अरुणिम देखती है। □

297/5, सिविल लाइन
बरेली (उत्तर प्रदेश)

कुचली कोई वीरबहूटी

योगेन्द्र दत्त शर्मा

फिर घिर आए काले बादल,
फिर नभ से जलधारा फूटी।
फिर पांवों के नीचे आकर
कुचली कोई वीरबहूटी!

लगा घूमने फिर आंखों में
एक सजल-सा बिम्ब शाम का,
सीता का सिन्दूर बह रहा
भीग रहा है मुकुट राम का;

फिर वनवास हुआ मन-आंगन
फिर से एक अयोध्या रूठी!

दुर्दिन के दाहक प्रवाह में
डूब गईं घड़ियां रसवंती,
देख रहे फिर व्यंग्य समय का
सहमे-सहमे नल-दमयंती;

निगल गई है कंठहार को
फिर दीवारों वाली खूंटी!

राजघरानों में, आश्रम के
अपमानों की एक श्रृंखला,
दुर्वासा का शाप भोगती
भटक रही दर-दर शकुंतला;

एक बड़ी मछली ने निगली
फिर अंतिम पहचान—अंगूठी!

फिर अमराई हुई अपर्णा
कोयल ने ओढ़ा निर्वासन,
सहम गया गोवर्धन पर्वत
लगा कांपने फिर इंद्रासन;

फिर गुमनाम व्यथा धरती की
लोक-कथा-सी पीछे छूटी!

स्वप्नवती गंधिल पलकों पर
इंद्रधनुष फिर गिरा गाज-सा,
ओझल होने लगा क्षितिज फिर
पानी में डूबे जहाज-सा!

रंग उतरने लगे अचानक
फिर पारे-सी प्रतिमा टूटी! □



गीत

राजेन्द्र गौतम

उभर रहे हैं
दीवालों पर
कैसे अजब सवाल।

वक्त गया है
जबसे हमको
फुटपाथों पर फेंक
पत्थर-नजरें
करतीं तबसे
क्यों प्रतिदिन अभिषेक
संकल्पों की काया की क्यों—
गिद्ध नोचते खाल!

छूट गई
सूने आंगन में
कुछ सपनों की धूल
यह अंजली
किसको सौंपें अब
ये मुरझाए फूल
पूजा के—
आले में पूरा
जब मकड़ी ने जाल। □

बी-226, राजनगर
पालम, नई दिल्ली-110045

अकेली हूं

सरला गुप्ता

मैं भीड़ में अकेली हूं
यह सच है।
पर कौन इस पर विश्वास करेगा?
यह सच सबसे बड़ा झूठ बन जाएगा
अकेलेपन का यह दंश केवल मेरा अपना है
और सब सपना है—
भाग्य के नाम पर
यह अकेली, वीरान, उदास
पगडंडी
मेरी अभिन्न सहेली है। □

उजली धूप

मेरे मन में
उतर आया है
एक उजली धूप का टुकड़ा
सुदूर कोनों तक फैला है प्रकाश
और फैली है चन्दन की महक
मैं फिर एक जन्म ले रही हूं। □

559, प्रहलाद वाटिका
मेरठ-250002

गीत

मधुर नज्मी

बात सच है हम कहेंगे—
फिर हरे जंगल जलेंगे।
बांसुरी पर गीत की परछाइयां हैं—
आस्था के फूल पर कुछ सुर्खियां हैं,
दर्द का एहसास जिन्दा है, न छीनो—
पतझरी रूमान की रानाइयां हैं,
एक रेखाचित्र में क्या?
इन्द्रधनुषी रंग भरेंगे।
दूर मीलों दूर तक कुहरा घना है—
छू सकें यह बूंद-छाया वर्जना है,
पारदर्शी बिम्ब सब धुंधला गए हैं—
झांकने की अब कहां संभावना है,
यह जरूरी तो नहीं,
सब बेजुबां रहकर सहेंगे।
सूर्य की अब अग्निमा यह आखिरी है—
आईना पर धूप झंझरी से झरी है,
कांपती लौ के सुनहरे हाशिए पर—
जिन्दगी हिम-खण्ड-सी पसरी हुई है,
एक 'बनजारिन' के संग-संग—
कारवां क्या चल सकेंगे? □

'काव्यायनम्'
हफीज कालोनी, आदर्शनगर,
मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ-276403

सावन-घन बरसे

सुषमा प्रेम

आंगन घिरी घटा मतवाली
द्वार बजी बूंदों की पायल
सांसों में सावन घन बरसे
आशाओं के फूटे पाटल।

पत्ते पत्ते पर हरियाली
नई उमंगें लेकर झांकी
कली कली मुस्कान लुटाए
फूल फूल की शोभा बांकी
सांझ भोर आकाश सजाते
रोज नए रंगों से बादल।

तृप्त हुई है धरती सारी
महक उठी है सोंधी माटी
लहर-लहर पुरवा के झोंकों
झूम रही है घाटी-घाटी
ओस भिगोई पंखुड़ियों पर
खिले खिले अनगिन तारक दल।

दीवानी बांसुरी स्वरों की
सौरभ भार लचकती डाली
बिखराए वर्षा का मौसम
गांव गांव में छटा निराली
आओ पथ में फूल बिछाएं
राह बने निष्कंटक निर्मल।
आंगन घिरी घटा मतवाली
द्वार बजी बूंदों की पायल। □

द्वारा—श्री बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'
नेवादा अलादादपुर, पो. बेंहदर
जिला हरदोई (उत्तर प्रदेश)

'आजकल' के सितम्बर, 1946अंक में प्रकाशित

अच्छी हिन्दी

रामचन्द्र वर्मा

भाषा की चर्चा—अपनी 'अच्छी हिन्दी' नामक पुस्तक में मैंने अनेक स्थानों पर संकेत किया था कि हिन्दी में भाषा की शुद्धता की चर्चा होनी चाहिए। हर्ष का विषय है कि लोगों का ध्यान इस ओर जाने लगा है और वे इस विषय में रस लेने लगे हैं। काशी के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'आज' में प्रायः गांव की चिट्ठी प्रकाशित होती है जो हिन्दी के एक बहुत पुराने लेखक लिखते हैं। साहित्य-जगत में ये सज्जन ग्रामीण के नाम से प्रायः परिचित हैं। उन्होंने अपनी किसी चिट्ठी में बरात शब्द लिखा था। एक वकील महोदय को जो उर्दू के ज्ञाता थे और 'बारात' के अभ्यस्त उन्हें 'बरात' शब्द गंवारू जान पड़ा। वे जानते नहीं थे कि चिट्ठी का लेखक कौन है। एक दिन वे लेखक के सामने ही 'बरात' को अशुद्ध ठहराने लगे। लेखक ने उस चर्चा का हाल 9 जून के आज में प्रकाशित कराया है, जिसमें 'बरात' शब्द की शुद्धता का प्रतिपादन किया है। अपने लेख के अन्त में उन्होंने ऐसे छः सात शेर भी उद्धृत किए हैं, जिनमें बरात शब्द का इसी रूप में प्रयोग हुआ है। अच्छी हिन्दी में मैं पहले ही बतला चुका हूं कि उर्दू वालों की देखा-देखी हम भी 'चलान' को 'चालान' और 'बरात' को 'बारात' लिखने लगे हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। 'बरात' शब्द उर्दू फारसी वालों का नहीं है। 'बारात' कभी अरबी या फारसी में नहीं निकली, वह तो हमारे यहां की चीज है हमारे यहां के शब्द 'वर-यात्रा' से उसकी उत्पत्ति हुई है। देहात में अब तक लोग 'वर यात्रा' को 'बरियात' कहते हैं। इसी बरियात से आगे चलकर हिन्दी में 'बरात' शब्द बना। उसमें 'ब' के बाद आकार की मात्रा तो उर्दूवालों ने और वह भी बाद के उर्दू वालों ने केवल उसमें अतिरिक्त फसाहत लाने के लिए बढ़ाई है, नहीं तो हमारे यहां उसका शुद्ध रूप 'बरात' ही है। आशा है उर्दू प्रेमी हिन्दी भाषी आगे से इस विषय में सावधान रहेंगे और शुद्ध को अशुद्ध समझने की भूल न करेंगे।

यह तो हुई एक शब्द की बात। अब भाषा की चर्चा लीजिए। इस प्रकार की चर्चा की हिन्दी में बहुत आवश्यकता है। यह चर्चा जगह-जगह होनी चाहिए। शुद्धता का ध्यान सब को रखना चाहिए। मेरी पुस्तक निकलने के बाद काशी में एक भाषा संस्कार समिति स्थापित हुई है, जिसके कई अधिवेशन हुए हैं। इन अधिवेशनों में पं. बाबूराव जी पराडकर, पं. अम्बिका प्रसाद जी वाजपेयी और राय कृष्णदास सरीखे उच्चकोटि के हिन्दी लेखक और विद्वान तक सम्मिलित हुए हैं। इन अधिवेशनों में भाषा विषयक कई विचारणीय विषयों पर उपयुक्त निर्णय भी हुए हैं जो समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं।

भाषा के संस्कार के लिए इस प्रकार की समिति सभी नगरों और स्थानों में बननी चाहिएं। समय-समय पर उनके अधिवेशन होने चाहिएं और उन अधिवेशनों में सभी भाषा प्रेमियों को सम्मिलित होना चाहिए। उनमें भाषा-सम्बन्धी विचारणीय प्रश्नों की चर्चा होनी चाहिए और शब्द तथा प्रयोगों आदि के शुद्ध और ठीक रूप स्थिर होने चाहिएं। भाषा के सम्बन्ध में लोगों को जिन विषयों में कठिनता या सन्देह हो, वे सब उन अधिवेशनों में उपस्थित होने चाहिएं और यदि कोई निराकरण या निश्चय हो तो पत्रों में उसकी सूचना निकलनी चाहिए। इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि सारे भारत की एक केन्द्रीय भाषा-संस्कार-समिति बने और प्रति वर्ष उसके कुछ निर्णय प्रकाशित होने चाहिएं। ऐसी बातों से भाषा के क्षेत्र का बहुत कुछ झाड़-झंखाड़ दूर होगा, भाषा की वाटिका स्वच्छ, सुन्दर और रमणीय होगी। इसके पूरे आयोजन का भार हिन्दी साहित्य सम्मेलन को लेना चाहिए। उसके वार्षिक अधिवेशनों के साथ भाषा-संस्कार-समिति के भी अधिवेशन होने चाहिएं। आशा है, इस प्रस्ताव का समर्थन सभी समझदार क्षेत्रों से होगा। □

ज्योति वृक्ष

नारायण लाल परमार

आकाश के गमले में
एक ज्योति वृक्ष
रोप दिया है मैंने
रोप दिया है
अपराजित विश्वास का
ओ टूटे हुए लोगो
आस्था के जुआरियों
शायद यह पेड़
तुम्हारे दृष्टि पथ में नहीं
या फिर
तुम पथ पर नहीं
या फिर कोई
आकाश ही नहीं। □

पीटर कालोनी, टिकरापारा
धमतरी (मध्य प्रदेश)-493773



भारत सरकार
डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिकेशन्स
सिविल लाइंस, दिल्ली-110054

जून 1991 माह के नए प्रकाशन

क्र. सं.	शीर्षक/चिन्ह	मूल्य
1.	एनुअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज 1978-79 (फैक्टरी सैक्टर) (10 खंड)	648.00 रु.
	प्रथम खण्ड प्रिंट 1990	24.95 पौं.
	पीसीएसओ. 33. 78-79	38.82 डॉ.
2.	एनुअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज 1983-84 (फैक्टरी सैक्टर) (10 खंडों में)खंड-I	946.00 रु.
	प्रिंट 1991	36.42 पौं.
	पीसीएसओ. 33. 83-84	56.67 डॉ.
3.	स्टैटिस्टिकल पॉकेट बुक 1990 प्रिंट 1990 पीसीएसओ. 5.90	45.00 रु.
4.	स्टैटिस्टिकल एब्स्ट्रैक्ट्स ऑफ इण्डिया 1989	150.00 रु.
		17.50 पौं.
	प्रिंट 1989 पीसीएसओ. 1.89	33.96 डॉ.
5.	स्टैटिस्टिकल सिस्टम इन इण्डिया 1989	23.00 रु.
		0.90 पौं.
	प्रिंट 1990 पीडीओएस. 74	1.38 डॉ.
6.	कॉमन प्रोडक्ट वुमेन कल्चर 1990 (फॉर इलेक्ट्रिसिटी, गैस एंड वाटर सप्लाई, कंस्ट्रकशन, होल सेल एंड रिटेल, ट्रांसपोर्ट स्टोरेज, एंड कम्यूनिकेशन फाइनेंशियल सर्विसेज, पर्सोनेल सर्विस	15.15 रु.
	सैक्टर्स) प्रिंट 1990	0.43 पौं.
	पीडीओएस. 75	0.88 डॉ.
7.	रिपोर्ट ऑफ द कम्प्ट्रोलर एंड ऑडिटर जनरल ऑफ इंडिया फॉर द इयर एंडिड थर्टी फर्स्ट मार्च, 1989 नं. I ऑफ 1990. यूनियन गवर्नमेंट. सिविल प्रिंट 1990	
	पीडीएआर. I ऑफ 1990 (ई)	33.00 रु.
8.	भारत का विधि आयोग उच्चतम न्यायालय–एक नई दृष्टि विषय पर एक सौ	83.70 रु.
	पच्चीसवीं रिपोर्ट प्रिंट 1991	3.54 पौं.
	पीएलडी. 92 (एच)	5.02 डॉ.
9.	द पब्लिक लायबिलिटी इंश्योरेंस एक्ट, 1991	2.10 रु.
		0.08 पौं.
	प्रिंट 1991. 6 ऑफ 1991	0.12 डॉ.
10.	द कंजर्वेशन ऑफ फॉरेन एक्सचेंज एंड प्रिवेंशन ऑफ स्मगलिंग एक्टिविटीज	0.70 रु.
	(एमेंडमेंट) एक्ट. 1990	0.03 पौं.
	पी. 27 ऑफ 1991	0.05 डॉ.
11.	द प्रिवेंशन ऑफ इलिसिट ट्रैफिक इन नारकोटिक ड्रग्ज एंड साईकैट्रोपिक	0.65 रु.
	सब्सटांसिज (एमेंडमेंट) एक्ट	0.03 पौं.
	1990. 26 ऑफ 1990	0.04 डॉ.
12.	जजेज ऑफ द सुप्रीम कोर्ट एंड द हाई कोर्ट्स एज ऑन	402.00 रु.
	फर्स्ट सैप्टैंबर, 1990.	16.08 पौं.
	प्रिंट 1990 पीडीजे. 1-90	24.12 डॉ.
13.	इंडियन लेबर इयर बुक 1989	358.00 रु.
		11.17 पौं.
	पिंट 1991 डीएलबी. 19.89	21.48 डॉ.
14.	स्टैटिस्टिकल प्रोफाईल ऑन वुमेन लेबर थर्ड इशू	122.00 रु.
	पी. 1990 पीएलबी.	4.88 पौं.
	373 (थर्ड इशू)	7.32 डॉ.
15.	मिनीमम वेजेज 1984	121.50 रु.
	पी. 1990	4.13 पौं.
	डीएलबी. 16.84	7.30 डॉ.
16.	सलैक्टेड स्टैटिस्टिक्स ऑफ द फॉरेन ट्रेड ऑफ इंडिया	36.00 रु.
	1989-90 पी. 1991	4.19 पौं.
	पीडीजीसीआईएस. 96. 89-90	0.96 डॉ.
17.	द इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसेज सिविल लिस्ट 1991.	
	पी. 1991 पीडीपीटी. 25	110.00 रु.
18.	सैंसस ऑफ इंडिया 1981. सीरीज-I पार्ट फोर-बी (वन)	
	पॉपुलेशन बाई लैंगुएज/	10.00 रु.
	मदर टंग (टेबल सी-7).	1.17 पौं.
	पी. 1991 पीआरजी. 114.81	3.60 डॉ.
19.	सैंसस ऑफ इंडिया 1981. सीरीज-21. त्रिपुरा पार्ट-12	102.00 रु.
	सैंसस एटलस. पी. 1989	11.89 पौं.
	पीआरजी. 12.81	36.72 डॉ.
20.	सैंसस ऑफ इंडिया 1981. सीरीज-II एम.पी. पार्ट-12	106.00 रु.
	सैंसस एटलस. पी. 1990	12.36 पौं.
	पीआरजी. 18.81 (एम.पी.)	38.16 डॉ.
21.	सैंसस ऑफ इंडिया 1981. पार्ट–10-8 सीरीज-22 यू.पी.	
	टाऊन सर्वे रिपोर्ट उन्नाव.	100.00 रु.
	पी. 1991. पीआरजी.	11.66 पौं.
	31.81 (यू.पी.)	36.00 डॉ.
22.	सैंसस ऑफ इंडिया 1981. सीरीज-30. पार्ट 10-सी.	
	लक्षद्वीप. सर्वे रिपोर्ट ऑन	11.80 रु.
	विलेज चेटलेट पी. 1990	1.39 पौं.
	पीआरजी. 13.81 (लक्षद्वीप)	4.26 डॉ.
23.	सैंसस ऑफ इंडिया. सीरीज-2. पार्ट 10-बी. ए.पी. टाऊन सर्वे	56.00 रु.
	रिपोर्ट (उडपायम) पी. 1989	6.41 पौं.
	पीआरजी. 18.81 (ए.पी.)	20.16 डॉ.

दो रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें बुक पोस्ट से भेजी जाएंगी तथा पुस्तक मूल्य का 20 प्रतिशत डाक शुल्क के रूप में अतिरिक्त भेजें। दो रुपये से अधिक और 10 रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मंगाने के लिए पुस्तक मूल्य का 20 प्रतिशत डाक और पंजीकरण शुल्क के रूप में भेजें। दस रुपये मूल्य से अधिक की पुस्तकें भिजवाने का डाक खर्च और पंजीकरण शुल्क यह विभाग वहन करेगा। पचास रुपये तक की पुस्तकें वी.पी.पी. के जरिए भी भेजी जा सकती हैं।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा जारी किए गए प्रकाशनों, समयबद्ध पत्रिकाओं और भारत सरकार के गजट (सभी खंड) के लिए कृपया हमारे किसी भी बिक्री डिपो/केन्द्र से संपर्क करें अथवा अधोहस्ताक्षरकर्ता से पूछताछ करें या अपना आर्डर बुक कराएं।

1. किताब महल, बाबा खड़क सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरिया यूनिट नं. 21, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 343708
2. बुक डिपो, 8-के.एस. रॉय रोड, कलकत्ता-700001 दूरभाष : 283813
3. सेल काउंटर, उद्योग भवन, गेट नं. 3, नई दिल्ली-110011 दूरभाष : 3012082
4. सेल काउंटर, मुख्यालय, सिविल लाइन्स, (पुराने सचिवालय के पीछे) दिल्ली-110054 दूरभाष : 2517800 और 2517823
5. सेल काउंटर, रेवन्यू बिल्डिंग (कस्टम गेट), नई दिल्ली-110002
6. सेल काउंटर, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली-110011 दूरभाष : 383991
7. सेल काउंटर, दिल्ली उच्च न्यायालय (लायर चैम्बर), नई दिल्ली-110003
8. सेल काउंटर, डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिकेशन न्यू सीजीओ बिल्डिंग, न्यू सीजीओ कम्प्लैक्स, न्यू मेरीन लेन, बम्बई-400020

ये प्रकाशन देश भर में और विदेशों में फैले हमारे अधिकृत एजेंटों और विक्रय एवं वापसी एजेंटों (सभी राज्य सरकारों से भी) प्राप्त कर सकते हैं।

पूछताछ के लिए संपर्क करें

कंट्रोलर ऑफ पब्लिकेशन्स,
डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिकेशन्स,
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

घर का जोगी जोगना, आन गांव का सिद्ध

डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी

अति आदर से होत है, अवस अनादर भाव।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय।

मलयागिरि में चन्दन बहुतायत से पाया जाता है, वहां की भीलनी उसे ईंधन की तरह प्रयोग करती हैं जब कि मैदानी इलाकों में चन्दन की लकड़ी कितनी महंगी मिलती है? अंग्रेजी में भी इसी प्रकार का मुहावरा प्रचलित है 'फेमीलियारिटी ब्रीड्स कन्टेम्पट्।' अधिक निकटता जहां होती है वहां आकर्षण समाप्त हो जाता है। ब्रजभूमि में कहा जाता है "लाड़ पे आई गई कोरनिया, पति से बोलने लगी—"फूफाजी"।

तो सचमुच घर का जोगी जोगना ही हो जाता है और बाहरवाला सिद्ध के रूप में पूजा जाता है। हमारे पड़ौस में बहुत प्रख्यात ज्योतिषी जी रहते हैं। वाराणसी में दस वर्ष अध्ययन करके उन्होंने ज्योतिष विद्या सीखी थी, भृगुसंहिता के भी माने हुए विद्वान हैं। हम उनसे अंकिल जी कहते हैं लेकिन आंटी जी को आप हमेशा सड़क किनारे तोता लिए हुए बैठे ज्योतिषाचार्यों से वार्तालाप करते पाएंगे। मैं उस दिन दफ्तर जा रहा था, देखता क्या हूं कि आंटी जी सड़क पर ज्योतिषाचार्य जी के पास खड़ी थीं, मैं भी वहां पहुंच गया। चाची जी ने एक कार्ड उठाया, एक दूसरा कार्ड तोते से उठवाया गया फिर उन महामानव जी ने उनका मिलान करके चाची को बताया कि उनका लड़का परीक्षा में 'टाप' करेगा। मैंने आंटी जी को अग्रिम बधाई दी। रिजल्ट जब निकला तो कुंवर साहब ने पांचों विषयों में अंडे प्राप्त किए। मैंने चाची जी से कहा—'आंटी जी, अंकिल तो 'क्वालीफाइड' ज्योतिषी हैं। चुनाव लड़ने से पहले बड़े-बड़े उम्मीदवार उनसे मुहूर्त निकलवाने आते हैं। आपको उनके ज्योतिष पर विश्वास नहीं है क्या? बोलीं-भैया क्या बताऊं, मेरी समझ में तो इनकी बात कभी आई नहीं, सड़कवाले ज्योतिषी जी की बात पहली बार गलत निकली है और सच पूछो तो भैया मेरा तो विश्वास उन्हीं पर है। उनको तो सिद्धि भी है, दस वर्ष पहाड़ों पर रह कर साधना करके आए हैं। मुझे स्पष्ट रूप से भासित होने लगा कि सचमुच घर के आदमी की कदर कहीं नहीं होती, उसमें कितना भी गुण हो। घर की मुर्गी दाल बराबर जब चाहो तब रांधो।'

मैं पिछले चालीस वर्षों से कवि सम्मेलनों में जाता रहा हूं। बाहर जाता हूं, स्टेशन पर ही इतना स्वागत होता है, कि मानों मैं कोई 'वी. आई. पी.' हूं। जब-जब बाहर गया हूं अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग करके परिचय दिया जाता है, पलक पांवड़े बिछाए जाते हैं किन्तु जब-जब मेरे जन्म स्थान पर कवि सम्मेलन होता है तो आज भी हम स्थानीय होने के नाते 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे' ही गिने जाते हैं। और तो और हमारे निकट के रिश्तेदार ही यह कहते सुने जाते हैं 'अजी इनको तो सुनते ही रहते हैं बाहरवालों को ही अधिक सुनवाइए।' और हम खून का घूंट पीकर रह जाते हैं। वे कवि जिनको हम बिना संकोच के 'पिद्दी न पिद्दी का शोरवा' कह सकते हैं, वाह-वाही लूटते रहते हैं, अपना रंग जमाते रहते हैं और हम देखते रहते हैं।

मेरे ननसाल में मेरे मामाजी के दोनों पुत्र ख्यातिप्राप्त डाक्टर हैं। छुट्टियों में उनके यहां गया था, ये ही बीमारी वहां देखने को मिली। नानी जी के पेट में दर्द हुआ। बाहर का एक अधकचरा डाक्टर आया और दो गोली देकर चला गया। मैंने नानी जी से पूछा—दोनों भैया इतने अच्छे डाक्टर हैं उनकी दवा क्यों नहीं खातीं? "भृकुटी चढ़ा कर बोलीं" बेटा, रमेशा और महेशा डाक्टर तो हो गए पर इनके हाथ में जस नहीं है, मुझे तो कभी इनकी दवाई से फायदा हुआ नहीं। मुझे तो जुकाम भी हो जावे तो डाक्टर अधकचरानन्द की दवा ही फायदा करे है। मुझे अपने भाइयों पर दया आई, दोनों ही क्रमशः एम. डी. और एम. एस. हैं किन्तु घर के जोगी जोगना हैं तथा आन गांव के अधकचरानन्द सिद्ध माने जाते हैं।

आगरावासियों के लिए ताजमहल के लिए वह उत्कट अभिलाषा एवं आकर्षण नहीं जो बाहर से आए पर्यटक के लिए होता है। प्रथम बार देखते ही 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' सा अनुभव करने लगता है, मथुरा निवासियों में जन्माष्टमी के दिन वो 'थ्रिल' की भावना नहीं होती जो लाखों तीर्थयात्रियों में देखी जाती है। नैनीताल और मसूरी की पर्वत श्रृंखलाओं को प्रथम बार देख कर जो आनन्द पर्यटक को आता है वह उसे पहाड़ पर रहने वाले कुली को नहीं आता जो बोझा उठाकर पर्यटक के साथ-साथ चलता है।

"अजी तुम्हारे पढ़ाने से ये न पढ़े। तुम पर बच्चों को प्यार से पढ़ाना ही नहीं आता। तुम पर दफ्तर में बैठकर घंटी बजाना और चपरासियों पर रोब जमाना आता है। बेबी कह रही थी कि पापा ने जो सवाल कराए स्कूल में आंटी जी ने सब काट दिए। कह रही थी गणित के सवाल अब नए कायदे से निकाले जाते हैं, अब नई गणित आ गई है न? कोई अच्छा-सा मास्टर लगा दो जो सबको पढ़ा जाया करे।" पति महोदय कहते हैं "मैडम् प्रिंसीपल तो पांच साल से ही हुआ हूं, उससे पहले तीस वर्षों से पढ़ाता आ रहा हूं। क्या मैं इन छोटी-छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों के पढ़ाने के भी काबिल नहीं रहा। बिना तीन सौ चार सौ के तुम्हारी इस फौज को पढ़ाने मास्टर नहीं मिल सकता। इतने रुपये किस खर्चे को काट कर बचेंगे। यों कहो कि घर का जोगी जोगना और आन गांव का सिद्ध। जिनको मैंने पढ़ा-पढ़ा कर मास्टर बनाया वे तो इस काबिल हो गए पर मैं अयोग्य हो गया। बहरहाल जो तुम्हारी समझ में आए करो मेरी अक्ल तो काम करती नहीं है।

मैं शिक्षा विभाग में निरीक्षक के पद पर कार्य करता था। सिलाई कढ़ाई की एक बड़ी कक्षा का निरीक्षण कर रहा था।

बच्चों द्वारा बनाई गई विभिन्न प्रकार की पोशाकें मुझे दिखाई गईं जो बच्चों द्वारा कक्षा में तैयार की गई थीं। मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। विभिन्न प्रकार के पर्दे, तकियों के गिलाफ, ब्लाउज, निकर, पाजामें आदि प्रदर्शनी में रखे हुए थे। मैंने अध्यापिका जी की प्रशंसा करते-करते एक एक बच्चे से प्रश्न शुरू किया कि आप लोगों के यहां कम से कम दर्जी की सिलाई के पैसे तो बच ही जाते होंगे। प्रायः सभी बच्चों ने कहा—हमारी कटाई घर वालों को पसन्द नहीं आती, कुछ बच्चों ने कहा—हमारे घरवालों को तो वही सिलाई पसन्द है जो किसी बड़ी 'टेलरिंग शाप' से तगड़ी रकम देकर सिलाई गई हो, मुझे सबसे अधिक आश्चर्य तो तब हुआ जब सिलाई कढ़ाई वाली टीचर की लड़की ने बताया कि हमारे घर में तो 'अंडरवीयर' भी बाहर से ही सिल कर आता है। मास्टरनी जी से जब पूछा तो मुस्कराती हुई बोलीं—इन्स्पेक्टर साहब, हम यहां बच्चों को सिखाते हैं लेकिन आप जानते हैं घर का जोगी जोगना, आन गांव का सिद्ध।

ताऊ गणेशी लाल ब्याज-भाड़े का कार्य करते हैं। वे नियमित कचहरी जाते हैं जैसे लोग नित्य मंदिर जाते हैं। सूद पर रुपया देते हैं और कस कर ब्याज लेते हैं। साल भर का ब्याज काट कर ही मूल देते हैं। कर्जदार की कमर ब्याज देते-देते ही टूट जाती है। फिर वे कचहरी में उस पर दावा दायर कर देते हैं। उनके वकील साहब भी पुराने डिजाइन के हैं। उनके 'क्लास फैलो' रहे हैं। कानून में नए परिवर्तनों का उन्हें बहुत कम ज्ञान रहता है फलस्वरूप ताऊ जी कई बार मुकदमें हार जाते हैं। उनके दोनों लड़के वकालत करते हैं और उनका शहर में बहुत नाम है। सुबह से ही मुवक्किलों का जमघट लगा रहता है लेकिन ताऊजी अपना बस्ता लेकर खंडहर साहब के घर ही तशरीफ ले जाते हैं। किसी ने उनसे कहा—भाई, जब घर में गंगा बह रही है, तुम इधर-उधर क्यों भटकते फिरते हो तो कहने लगे—ये लड़के मेरे केस क्या लड़ सकते हैं, अभी इनका तजुर्बा ही क्या है? मेरे केस लड़ने को स्पैशल दिमाग चाहिए, स्पैशल। मेरे 'केसों' की बारीकियां तो बाबू खंडहर लाल जी ही जाने हैं। जब किसी ने फिर पूछा—उसने तो आपको कई केसों में हरवा दिया तो बोले—हार जीत तो लगी ही रहती है इसकी परवाह कौन करता है। नीम हकीम के हाथों मर जाना बेहतर है और वे अपना बस्ता बगल में दबाकर मुंशी खंडहर लाल के दौलतखाने पर तशरीफ ले गए।

इसे कहते हैं घर का जोगी जोगना आन गांव का सिद्ध। □

13/7, शक्तिनगर,
दिल्ली-110007

(पृष्ठ 6 का शेष)

यदि हम हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग करें जो पूरे हिन्दुस्तान में प्रचलित है तथा जिसकी ओर महात्मा गांधी ने भी कभी संकेत किया था, तो तब यह हिन्दुस्तानी भाषा विश्व की दूसरी बड़ी भाषा हो जाएगी। इससे देश में हिन्दी उर्दू के वर्तमान भाषा विभाजन से उत्पन्न तनाव भी दूर हो सकेगा। यह भी संभव है कि पाकिस्तान के साथ भाषा-सम्पर्क स्थापित हो जाए और भविष्य में भारत तथा पाकिस्तान इस उप-महाद्वीप की दो प्रधान भाषाओं हिन्दी और उर्दू की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता के लिए मिलकर प्रयास करें। कम से कम तीन और राष्ट्र नेपाल, फीजी और मारीशस इस प्रयास में शामिल हो ही सकते हैं।

प्रारम्भिक हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक फ्रांस निवासी गारसा द तासी ने इसी हिन्दुस्तानी के संबंध में लिखा है, "हिन्दुस्तानी वास्तव में सबसे अधिक अभिव्यंजना शक्ति-सम्पन्न और सबसे अधिक शिष्ट एवं प्रचलित भाषा है तथा बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी को समस्त एशिया में कोमलता एवं विशुद्धता की दृष्टि से जो ख्याति प्राप्त है वह अन्य किसी भाषा को नहीं है...।"

और उर्दू ही क्यों, या फारसी ही या अरबी ही क्यों, हिन्दी तो विभिन्न भारतीय भाषाओं की सहोदरा बहिन है। "...यह बात ध्यान देने योग्य है कि संविधान-निर्माताओं ने भारत की भाषाई समस्याओं को देखते हुए भारत की अन्य भाषाओं के विकास के बारे में भी गहराई से विचार किया था। उन्होंने संविधान की अष्टम अनुसूची में भारत की पन्द्रह **प्रमुख भाषाओं, असमियां,** उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, **तमिल, तेलुगु,** पंजाबी, बंगाली, मराठी, मलयालम, संस्कृत, **सिंधी और हिन्दी** को भी स्थान दिया। अष्टम अनुसूची में इन भाषाओं को यद्यपि राष्ट्रभाषा का नाम नहीं दिया गया, लेकिन इसमें यह अभिप्राय अवश्य ही निहित था कि ये भारत की राष्ट्रभाषाएं हैं।

भाषाशास्त्रियों के मतानुसार राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा होती है और इसी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता से राष्ट्रीय चेतना पैदा होती है और राजभाषा राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और राजनीतिक एकता के लिए सरकारी कामकाज में प्रयुक्त होती है तथा शासन और जनता के बीच संपर्क पैदा करती है। वास्तव में भारत के बहुभाषी देश होने के कारण अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एकता की भावना को बढ़ावा देना आवश्यक है। इस उद्देश्य को पूरा करने में हिन्दी भाषा ही समर्थ है क्योंकि यह भाषा सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय एकता की माध्यम भाषा की भूमिका निभाती चली आ रही है। यह भाषा अन्य सभी भारतीय भाषाओं को जितना सहयोग प्राप्त करेगी अपनी भूमिका उतनी ही सफलतापूर्वक निभा सकेगी और संपर्क भाषा बनने में कामयाब होगी। सम्पर्क भाषा बनकर यह किसी अन्य भाषा को अपने उपयुक्त स्थान से न तो विस्थापित करना चाहती है और ना ही उनके हितों पर कुठाराघात ही करना चाहती है।" क्योंकि अन्य भारतीय भाषाओं की समृद्धि पर ही तो हिन्दी की समृद्धि निर्भर है। जिस प्रकार कमल में अनेक पंखुड़ियां होती हैं और वह तभी सुन्दर लगता है जब सभी पंखुड़ियां सुन्दर हों। हमारी सभी भाषाएं ऐसी ही सुन्दर पंखुड़ियां हैं और हिन्दी की स्थिति उस वृत्त की तरह है जिस पर ये पंखुड़ियां लगी हुई हैं। □

करमटोली,
रांची-834008 (बिहार)

प्रवासी हिन्दी साहित्य के समर्पित साधक : सोमदत्त बखौरी

डा. वीरेन्द्र शर्मा

हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री सोमदत्त बखौरी के निधन से न केवल मारीशस में हिन्दी भाषा और साहित्य, प्रत्युत समग्र प्रवासी साहित्य में हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अपूरणीय क्षति हुई है। श्री बखौरी ने जिस निष्ठा, श्रद्धा एवं उत्साह के साथ हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार और उसके अनवरत उन्नयन के लिए कार्य किया तथा जिस सहजता और तत्परता की भावना से बहुविध साहित्य का सृजन किया वह हिन्दी जगत के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

मारीशस में हिन्दी के लिए अमित अनुराग है। वहां इसका चतुर्दिग प्रचलन है। इस भाषा के माध्यम से वहां के साहित्यकार अनेक विधाओं में अपने मनोभावों और विचारों, आकांक्षाओं और अभिलाषाओं, कल्पना एवं लोकचेतना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त कर रहे हैं। स्मरणीय है कि मारीशस में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का अभूतपूर्व समारोह समायोजित हुआ जिसका अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्व है। इस समारोह के सफल आयोजन में बखौरी जी का सराहनीय योगदान रहा।

मारीशस के साहित्यकारों में श्री सोमदत्त बखौरी का नाम अग्रिम पंक्ति में है। हिन्दी के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित बखौरी जी एक विद्वान विचारक, प्रभावशाली वक्ता, संवेदनशील कवि, समर्थ लेखक और सुयोग्य संपादक थे। उनका व्यक्तित्व भव्य, स्नेहिल और आत्मीयतापूर्ण था। हिन्दी के प्रति अनन्य अनुराग और ललक को उन्होंने अपनी कविता 'जय हिन्दी' में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

हम को प्यारी हिन्दी भाषा
जितनी प्यारी सब से माता,
हमको प्यारी हिन्दी भाषा
जितना प्यारा देश हमारा!

कर्म हमारा पढ़ना इसको,
धर्म हमारा रखना इसको,
लाज बचानी है इसकी तो
हिन्दी बोलो! हिन्दी बोलो!

सब कुछ पढ़के, भूला-भटका
ना जो पढ़ता मातृ-भाषा
अपनी मां को देता धोखा
कह सौतेली मां को माता।

'प्रवासी का भारत' कविता में उन्होंने मारीशस-निवासियों में भारत के प्रति असीम श्रद्धा का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। इस संबंध में निम्नलिखित पंक्तियां कितनी हृदय स्पर्शी हैं।–



सागर के पार, बसे हुए,
भारत माता के नैनों से न्यारे,
हम प्रवासी
अधीर हो उठते कभी
उनके दर्शन के लिए।
तो क्या करते?
कल्पना के रंगों को लेके
श्रद्धा की तूलिका से
मन-पटल पर अपने
चित्र बनाने लगते।

मारीशस में हिन्दी सेवी संस्थाओं और साधकों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने अत्यन्त भावप्रवण झांकी प्रस्तुत की है। 'हिन्दी दिवस' शीर्षक से लिखी कविता में ये पंक्तियां बड़ी ही अर्थगर्भित हैं–

कहां-कहां आश्रय मिला
पद-दलित पद-यात्री को?
कभी मजदूरों की झोपड़ियों में
तो कभी कथावाचकों के पंडालों में
तो कभी आर्यसमाज के मंदिरों में,
कभी भगत बंधुओं की कृपा से हिन्दी भवन में।
तो कभी राय-गिरजानन-जगदत्त की
त्रिमूर्ति की शरण में :
कभी पंडित विष्णुदयाल, की विशाल सभाओं में
तो कभी प्रोफेसर रामप्रकाश के प्रताप से स्कूलों में;
कभी लेखकों की लेखनियों की नोक पर
तो कभी कवियों के कंठ स्वर में..."

हिन्दी की लोकप्रियता तथा उसके जनभाषा के स्वरूप को 'दिल्ली में हिन्दी' कविता में बखौरी ने अत्यन्त प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त किया है–

फैशन परस्त दिल्ली में
हिन्दी नहीं मरेगी
अंग्रेजी के हमले का
वह सामना करेगी
इसलिए नहीं कि
वहां साहित्यिक गोष्ठियां होती
....
पर इसलिए कि
है वह ऐसी बोली
जो नौकरों से बोली जाती।"

बखौरी जी अत्यन्त प्रबुद्ध सहज कवि थे। उन्होंने कविता की परिभाषा काव्यधारा में सांकेतिक शैली में इस प्रकार दे दी है:

काव्य-धारा

एक तट है इधर,
एक तट है उधर,
बीच में बहती धारा;
इधर है अनुभूति,
उधर है अभिव्यक्ति,
बीच में है कृति :
बहती जैसे सरिता
बहती कैसे कविता।
वस्तु है इधर
उधर शिल्प है–
एक तट पर
"क्या कहना है?"
पानी के बाहर
मछली की तरह है छटपटाता:
दूसरे तट पर
"कैसे कहना है?"
पानी के छोर पर
मछुए की तरह है अकुलाता :
और मछली मछुए के बीच
बहती रहती धारा।

श्री सोमदत्त बखौरी जी का जन्म 1 नवम्बर 1921 को मारीशस में हुआ था। प्रारम्भ में एक सरकारी पाठशाला में अध्यापन करने के पश्चात कानून के अध्ययन के लिए वे इंग्लैंड गए। वहां से बैरिस्टर बनकर वे 1954 में मारीशस लौट आए और 1960 तक वकालत करते रहे। इसके पश्चात वे पोर्ट लुई की नगरपालिका के नगर संचिव के पद पर रहे।

श्री बखौरी मारीशस में हिन्दी भाषा और साहित्य तथा संस्कृति से सम्बद्ध अनेक संस्थाओं और संगठनों से जुड़े रहे। इनमें हिन्दी प्रचारिणी सभा, हिन्दी परिषद, महात्मा गांधी संस्थान आदि उल्लेखनीय हैं। वे त्रैमासिक पत्र 'अनुराग' के प्रधान संपादक थे। उनकी कृतियों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं–

लोकल गवर्नमेंट इन मारीशस, हिन्दी साहित्य की एक झांकी, हिन्दी इन मारीशस, मुझे कुछ कहना है–(काव्य-संग्रह), बीच में बहती धारा–(काव्य-संग्रह) आवर कांस्टीट्यूशन, गंगा की पुकार (भारत की यात्रा का संस्मरण), प्रोफाइल आफ द हिन्दू कम्यूनिटी।

श्री बखौरी को भारत सरकार ने विश्व हिन्दी पुरस्कार से सम्मानित किया था। 24 जनवरी, 1969 को पुरस्कार के समर्पण समारोह के अवसर पर उन्होंने अपने भाषण में कहा था–

"यह मानी हुई बात है कि भारत के बाहर भी हिन्दी साहित्य का सृजन हो रहा है। उस साहित्य को भारतीय हिन्दी साहित्य का अभिन्न अंग बना देना चाहिए और भविष्य में जब कोई हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखे तब इस बात का उल्लेख करना न भूले कि भारत के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किस प्रकार का साहित्य सृजन हो रहा है।"

बखौरी जी के ये हृदयोद्गार निश्चय ही हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

भारत की सांस्कृतिक यात्रा से सम्बद्ध बखौरी की पुस्तक 'गंगा की पुकार' का 'द काल आफ गैजेंज' शीर्षक से अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है। हिन्दी में इस पुस्तक की भूमिका श्री रामधारी सिंह दिनकर ने लिखी है–उन्होंने लिखा है–"जहां तक मुझे मालूम है, यात्रा विवरण की यह पहली पुस्तक है जिसे एक प्रवासी भारतीय ने भारत की भाषा में ही नहीं इस देश की राष्ट्रभाषा में लिखा है। इस दृष्टि से इस ग्रंथ का बड़ा भारी ऐतिहासिक महत्व है।"

श्री सोमदत्त बखौरी ने हिन्दी भाषा और साहित्य की स्तुत्य एवं अभिनंदनीय सेवा की। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसके गौरव की वृद्धि में उनकी भूमिका चिरस्मरणीय रहेगी। □

909, सैक्टर 12,
रामकृष्ण पुरम,
नई दिल्ली-110022

आजकल

पुराने अंकों की प्रतियों के लिए सम्पर्क करें

सहायक व्यापार व्यवस्थापक,
कमरा नं. 199,
पुराना सचिवालय,
दिल्ली-110054

दूरभाष : 2518906

अकेली

जी कमलाधरन

यह फास्ट पैसेंजर बस राजधानी जाती है। राजधानी दिल्ली को नहीं, केरल की राजधानी त्रिवेन्द्रम को। गांव से सुबह निकलने वाली यह गाड़ी करीब दस बजे त्रिवेंद्रम पहुंच जाती है। सरकारी नौकरों और दफ्तरों की लालफीतेशाही में उलझी अपनी जिन्दगी को सुलझाने के लिए जाने वाले आम आदमी को भी यह गाड़ी एक आसरा है। मैं भी ठीक समय पर कालिज पहुंचने के लिए इसी गाड़ी को पकड़ा करता हूं। मैं बस-अड्डे से नहीं, वरन् बीचवाले बस-स्टाप से गाड़ी में चढ़ता हूं। उस दिन गाड़ी में चढ़ा किया तो देखा पिछली कतार की एक लंबी सीट को छोड़कर बाकी सब भरी हुई थीं। पिछली सीट पर केवल दो औरतें बैठी हुई हैं। एक की गोद में बच्चा, मां का दूध पीकर सो रहा है। यह दिल्ली परिवहन निगम की गाड़ी नहीं है, जिसमें स्त्री-पुरुष एक साथ बैठकर शरारतों की जलेबियां खा सकें। हां, किशोर, अधेड़ और बूढ़ों की शरारत में थोड़ा-बहुत अन्तर तो आयु का भेद है। मगर कोई भी शहरी सभ्यता के नाम पर इस क्रिया-कलाप से विमुख नहीं है। आखिरी जलेबी, जलेबी ही है न? लेकिन इधर गांव से निकलने वाली सभी गाड़ियों में स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग सीटें निर्धारित हैं। फास्ट-पैंसेजर इसका अपवाद है। उसमें स्त्री-पुरुष का कोई अंतर नहीं। फिर भी कोई पुरुष, स्त्री के साथ बैठ जाता है तो आगे-पीछे की सीटों पर बैठने वालों की तुच्छ नजरें बार-बार उन पर पड़ती हैं कि वहां कोई गुप्त व्यापार तो नहीं चल रहा है। दूसरों का मन जलता भी होगा। क्योंकि जलेबियां उनको नहीं मिलीं। जो भी हो लंबी यात्रा शेष है। मैं उस लंबी सीट पर बैठ गया। गाड़ी कुछ आगे बढ़ी तो एक स्त्री अपने पुरुष के साथ अन्दर घुस आई। मुझे राहत मिली। क्योंकि वह आदमी अपनी बीबी के साथ इस क्रम में बैठ गया कि मैं पुरुष के पास हो गया। अब पिछली सीट पर हम पांच हो गए। उस लंबी सीट पर छः लोग बैठ सकते हैं। अभी एक की जगह खाली पड़ी हुई है। गाड़ी तेज रफ्तार में आगे बढ़ने लगी।

मैं विचारों की लहर में खो गया। कालिज की घटनाएं। वार्षिक समारोह के दिन शहरी लड़कियों की शरारतें। चरस के नशे में शोर-गुल करने वाली, सीटियां बजाने वाली 'शहर के सिंहों' की बेटियां। प्रिंसिपल के पास रिपोर्ट करने वाले प्राध्यापक को अपने पिताजी की राजनीति के बल पर ट्रांसफर कराने की धमकी देने वाली उनकी अगुवा। मोटी तगड़ी उस लड़की के बेढंगे अंगों की याद ही मेरे ओठों पर हंसी की रेखा बन गई। धीरे-धीरे एक आलस्य की नींद में मैं यथार्थ से स्वप्न लोक में पहुंच गया। मन सो गया, मगर शरीर गाड़ी के साथ इधर-उधर डोल रहा था।...गाड़ी एक झटके के साथ रुक गई तो आंखें खुलीं। देखा तो गाड़ी मेडिकल कालिज-स्टाप पर पहुंच गई है। लोग उतरने लगे। कुछ नए यात्री अन्दर घुस आए। उनमें एक नौजवान लड़की भी थी। पोशाक और हाव-भाव में लापरवाही स्पष्ट नजर आ रही थी। निस्संकोच की मुद्रा। लगता है कहीं दूर से अकेली सफर करने निकली है। गाड़ी में इधर-उधर नजर डालकर बैठने के लिए जगह वह ढूंढ़ रही है। पिछली सीट पर एक के लिए जगह पाकर वह झोला थाम कर आगे बढ़ी और मेरे पास बैठ गई। मैं कुछ सहम गया। क्योंकि आगे की सीट पर बैठने वाली, विधान सभा भवन की टाइपिस्ट मेरी पड़ोसिन है, मेरी बीबी की सहेली भी। मैं पुरुष के साथ और सटकर बैठ गया ताकि जहां तक हो सके युवती के शरीर से न छुए। स्वयं उठकर खड़ा होना, मैं, अपने पुरुषत्व का अपमान समझता हूं। जब अपरिचित पुरुष के साथ बैठने का साहस एक स्त्री कर सकती है तब पुरुष होकर भी मैं उसके साथ बैठने से डर जाऊं तो वह कायरता ही है। सब लोगों की नजरें बारी-बारी से हमारी ओर उठ रही हैं। क्या कमाल है कितनी जल्दी 'मैं'—'वह' 'हम' हो गए हैं। पड़ोसिन टाइपिस्ट की नजर और चौकन्नी हो गई। पुरुष अगर किसी से डरता है तो अपनी पत्नी से। अगर टाइपिस्ट मेरी बीबी के कान भर देती...। दिल की धड़कन मुझे उससे दूर रहने को मजबूर करती है, मगर मन की जवानी उसके शरीर को छूकर बैठने को प्रेरित करती है।



दूसरों की नजरों को छिपाकर मैंने उसका निरीक्षण किया। स्वभाव में अलहड़पन, रूप में यौवन का आकर्षण। लता-सी पतली कमर, ज्यादातर खुली। साड़ी के बाहर उचकती-उभरती मादकंता। यह युवती अकेली यहां क्या कर रही है? उसके मन में कोई कालापन तो नहीं है? मन में संदेह होने लगा कि यह कोई बुरी औरत है

वह तो आराम से बैठी है। मेरे शरीर को छूना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। बाल हवा में तैर कर मुख को चूमने लगे तो रोमांच हो आया। दिल की गति तेज होने लगी। कण्डेक्टर की खुरदरी आवाज उभरी–

"टिकट ले लिया क्या?"

"नहीं तो?"

"नहीं तो क्या? गाड़ी पर चढ़ते ही टिकट ले लेना है।"

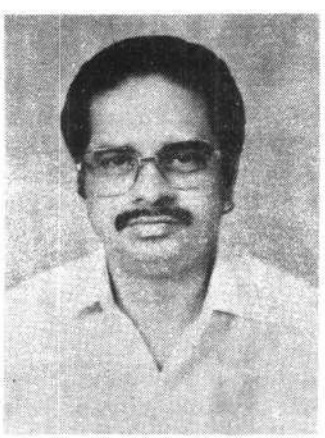
"आपने दिया नहीं तो कैसे ले लूंगी?"

आवाज में निडरता। एक रुपया देकर टिकट ले लिया और चुपचाप बैठ गई। कण्डेक्टर अब भी कुछ बड़बड़ा रहा है, लेकिन उसने अनसुनी कर दी। कुछ देर बाद उसने मुझसे पूछा–

"क्या यह बस तंपानूर जाती है?"

"जी हां यह वहां तक ही जाती है। वहीं पर बस-अड्डा है।"

प्रश्न का उत्तर मैंने दिया फिर भी मन में अनेक शंकाएं उठ रही थीं। इसको यह भी पता नहीं कि गाड़ी किस ओर जा रही है? क्या यह आकाश में स्वतंत्र विचरण करने वाली चिड़िया है? मेरी ओर यह प्रश्न छोड़कर क्या वह अपने इस स्वभाव का परिचय देना चाहती है? जब मैं इस विचार में डूबता रहा तो वह स्वयं कहने लगी, वह भी मुझको सुनाकर। "उधर किसी टूरिस्ट होटल में कमरा ले लेना है।" मेरा संदेह दृढ़ होने लगा। वह इस वाक्य से मुझे अपने किराए के कमरे में बुला रही है। लेकिन मन में कुछ संदेह अभी शेष है। किसी-न-किसी प्रकार यह समझ लेना चाहिए कि उसका उद्देश्य काला है या सफेद। पासवाली टाइपिस्ट का डर भी अब नहीं है। वह अब तक उतर चुकी थी। परीक्षा के तौर पर झोले पर रखी उसकी अंगुलियों को छूने के विचार से मैंने हाथ बढ़ाया तो उसने अपना हाथ दूर कर लिया। स्त्री यहां पर पहेली बन जाती है। मैंने पूछा–"आपका स्थान?"



जी. कमलाधरन



"त्रिच्चूर में मेरा घर है"–कहकर वह चुप हो गई।

उसके मन की बात को बाहर लाने के लिए मैंने एक सवाल किया–

"क्या मैं भी आपके साथ आऊं?"

"क्यों?"

"नहीं...कुछ नहीं...आपकी कोई सेवा...अपरिचित जगह है, अकेली आप। इसलिए पूछ रहा हूं।"

"मैं इस शहर में कल ही आई हूं। मिनिस्टर से मिलना है।"

मैंने सोचा यह झूठ बोल रही है। तब उसने फिर कहा–"मैं एक जर्नलिस्ट हूं, मिनिस्टर से इन्टरव्यू लेना है।" एकदम मेरा भाव बदल गया। मैंने कहा–"आय एम वेरी ग्लैड टू मीट यू। आपका शुभ नाम? किस पत्रिका में काम कर रही हैं आप?"

"नाम तो लक्ष्मी है। 'शुभ दिन' मासिक पत्रिका में काम करती हूं।"

मैंने स्वयं अपना परिचय दिया "आय एम विश्वनाथन। इधर विमेन्स कालेज में लेक्चरार हूं। देखिए जमाना ही ऐसा है। आप अकेली घूम रही हैं। ऐसे निडर और खुले व्यवहार से लोग आप पर संदेह करेंगे। हमारे समाज का स्वभाव ही ऐसा है। मैं भी बहुत शर्मिन्दा हूं, क्योंकि मेरे मन में भी आपके प्रति तरह-तरह की शंकाएं उठीं।"

तब तक गाड़ी तंपानूर बस-अड्डा पहुंच चुकी थी। हम दोनों उठे। उसने आखिरी वाक्य के रूप में कहा "समाज का यही स्वभाव है तो मेरे प्रोफेशन का भी यही स्वभाव है।...बाई, सी यू" बिदा लेकर झोले को हवा में घुमाकर वह एक ओर चल दी। □

लेक्चरार, हिन्दी विभाग,
महिला कालेज,
त्रिवेन्द्रम (केरल)

कालियदह की कहानी सूर-नरसिंह की जुबानी

रवीन्द्र अन्धारिया

साहित्य सृजन एक सौद्देश्य प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप वह नितांत वैयक्तिक होने के बावजूद एक सामाजिक एवं शैक्षिक प्रक्रिया भी हो जाती है। इसी कारण श्रीमद्भागवत जैसे हमारे ग्रंथ स्थान एवं काल की सीमाओं को लांघकर आज पर्यन्त साहित्यकारों के लिए प्रेरणा का अक्षुण्ण स्रोत बने रहे हैं।

गुजराती के भक्त कवि नरसिंह तथा हिन्दी के कवि सूरदास ने उक्त ग्रंथ से प्रेरणा पाकर जो रचनाएं की हैं उनका गान-श्रवण करते-करते लोग आज भी नहीं अघाते। इस निरन्तर लोकप्रियता के पीछे भक्तिभावपूर्ण नेत्रों से अवलोकित विराट ऐश्वर्य का सौन्दर्य-बोध है। जिस विराट ऐश्वर्य के दर्शन आम आदमी के लिए स्वप्न में भी सुलभ नहीं, वह विराट ऐश्वर्य इन कवियों की वाक् क्रीड़ा से प्रत्यक्ष हो उठा है।

उक्त दोनों महाकवियों ने कालियदह प्रसंग को लेकर काव्य रचनाएं की हैं। निःसन्देह दोनों के काव्य मर्मस्पर्शी हैं। यद्यपि दोनों की अनुभूति समान है लेकिन अभिव्यक्ति शैली नितान्त भिन्न है। नरसिंह ने गागर में सागर भरने की सार्थक चेष्टा की है तो सूरदास ने गागर से सागर भरने का उपक्रम किया है। काव्याचार्यों का यह अभिप्राय है कि काव्य रचना की प्रलम्बता या लघुता कवि की सर्ग शक्ति पर निर्भर करती है। यहां भी दोनों महाकवियों द्वारा रचित नामदमन विषयक काव्यों का अध्ययन कर यह कहा जा सकता है कि दोनों की सर्ग शक्ति भिन्न है अतः अनुभूति की समानता होने के बावजूद भी शैलीगत भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि नरसिंह की सर्गशक्ति प्रभातियां, पद तथा भजन आदि तक सीमित है, जबकि सूरदास की सर्गशक्ति महाकाव्य की परिधि को छूती है। इसके परिणामस्वरूप सूर पदों की श्रृंखला रच कर भी महाकाव्य का सृजन कर लेते हैं। वैसे भी सूर ने ज्योतिहीन नेत्रों से दिव्य ज्योत के दर्शन किए हैं लिहाजा वे देखी हुई एक भी चीज को विस्मृत करना नहीं चाहते जबकि नरसिंह ने अपने नेत्र एवं चेतना के बल पर चयन किया है। चयन अवसर लाघवधर्मी होता है अतः कालियदमन घटना का टैलिफानिक वर्णन कर संतुष्ट हो जाते हैं जबकि सूरदास कृष्णभक्तों को इस घटना का अखबारी वृत्तान्त देते हैं। अखबारी वृत्तान्त में जो भावात्मक आरोह-अवरोह सहज है वह टैलिफानिक इत्तिवृत्त में सुलभ नहीं है। इसी प्रकार टैलिफानिक इतिवृत्त में जो सटीकता है वह अखबारी वृत्तान्त में सम्भव नहीं है। बहरहाल दोनों की शब्द-लीला ही निराली है। आइए, इस लीला का पान कीजिए...

कथांश

श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के सोलहवें अध्याय में कालियदमन विषयक लोमहर्षक कथा वर्णित है। इसका आरम्भ महाराज परीक्षित के सवाल से होता है और शुकदेवजी इसका प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं—ग्रीष्म की प्रखर धूप से पीड़ित गौ-गोपालक गण ने जैसे ही यमुना के विषैले जल का पान किया, वैसे ही वे सब अचेतन होकर गिर गए। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि से सब को पुनर्जीवित किया। कालिनाग के विष से यमुना का जल सदा खौलता रहता था। उस पर से उड़ान भरने वाले खग-विहग भी दिग्ध होकर गिर जाते थे और मर जाते थे। प्रदूषित जल पर से आने वाला पवन भी विषाक्त हो जाता था। इसके स्पर्श मात्र से तट पर रहने वाला पशु-पक्षी तथा मानवगण बेहोश होकर गिर जाता था। संक्षेप में सम्पूर्ण जीव सृष्टि कालिनाग से प्रताड़ित थी, आतंकित थी। इस दारूण दैत्य से मुक्ति दिलाने हेतु श्रीकृष्ण कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ कर यमुना सर में कूद पड़े थे। आरम्भ में प्रचण्ड शक्तिशाली नागराज ने वामनस्वरूप भगवान को अपने नागपाश में जकड़ लिया। लेकिन तब प्रभु ने लीला करके अपनी वामन देह को विराट बनाना आरम्भ किया। इससे देह फूलती गई और कालिनाग के अंग उपांग टूटने लगे। टूटन का दर्द जब अपेक्षाकृत बढ़ गया तब उसने ब्यूह परिवर्तन किया। अब भगवान को मुक्त कर वह उन्हें डसने के लिए दौड़ा। उसके कातिल दंश से बचने के लिए प्रभु ने वर्तु-लाकार दौड़ना शुरू किया। कालिनाग ने इनका पीछा किया। लेकिन सबको मुक्ति दिलाने वाले को कौन पकड़ सकता है भला? इस भगदौड़ में कालि थक कर चूर हो गया तब भगवान स्फूर्ति दिखाकर उसके फन पर चढ़ गए। फिर अपने वज्रपाद प्रहार से प्रभु उसके डसने को उठे हुए फनों को कुचलने लगे। इस प्रकार अपने अद्भुत नृत कौशल से इन्होंने कालि को मृतप्रायः ही कर दिया। अनन्ततः कालि की आंखें खुल गईं और उसने अपने परिवार समेत प्रभु की शरण ली। नागरानी का आर्तनाद सुनकर प्रभु ने उसे मुक्त किया तथा समुद्र के रमणक द्वीप पर जा बसने का आदेश दिया। जब कालिनाग ने खगराज गरुड़ से रक्षा की याचना की तब भगवान ने इसे अभय वचन दे दिया। अभय वचन सुनकर नागराज कालि बहुत ही प्रसन्न हो गया। यमुना से विदा होने से पूर्व इसने प्रभु की नाना प्रकार के उपहार रखकर सेवाभक्ति की।

इधर जब नन्दराय एवं यशोदामैया को यह ज्ञात हुआ कि उनके लाडले नटखट नंदकिशोर ने तो गेंद पाने के लिए यमुना में गोता लगाया है तो वे शोकातुर हो भागे हुए तट पर आ पहुंचे। उनको कई प्रकार के अमंगल शकुन होने लगे। सारा गांव यमुना तट पर विलाप करने लगा। जब इस जीवन में कृष्ण ही नहीं रहा तो फिर इस जीवन का अर्थ ही क्या रह गया है, ऐसा सोच यशोदा ने भी यमुना में कूदना चाहा। लेकिन बड़के भैया को अपने अनुज पर अतीव विश्वास था। अतः वे सब को ढांढस बंधाते रहते थे। इस बीच कालिदेह को वश में करके प्रभु लौट आए। चारों ओर हर्ष की हिल्लौरे उठने लगीं।

सौन्दर्यानुभूति

इस प्रकार की कथा श्रीमद्भागवत में वर्णित है। इस कथा के

उत्स को ग्रहण कर दोनों महाकवियों ने अपनी सृजनात्मकता का परिचय दिया है। यद्यपि दोनों महाकवियों ने इस लोमहर्षक घटना का बड़ा ही सटीक वर्णन तो किया है लेकिन सूरदास जहां अपने औपन्यासिक दायित्व को (कथा तत्व के सन्दर्भ में औपन्यासिक दायित्व संज्ञा ग्रहण करें।) पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध दीखते हैं, वहां नरसिंह इस दिशा की आर उन्मुख ही नहीं हैं। इसका प्रमुख कारण नरसिंह को इस कथा में नहीं, कथा के भ्रूण में ही रूचि है जबकि सूरदास को कथाभ्रूण एवं कथा उभय में रूचि है। इसके परिणामस्वरूप नरसिंह ने इस सम्पूर्ण लोमहर्षक घटना को केवल मात्र चौबीस पंक्तियों के एक परभातिया (पद) में वर्णित कर परितोष पा लिया है जबकि सूर का प्रसारधर्मी चित्त इस विषय पर 67 पद लिखकर भी संतुष्ट नहीं होता। अतः उन्होंने पुनः 312 पंक्तियों में पूरा प्रसंग चित्रित कर डाला। बेशक ये पंक्तियां कवि की मौलिकता की द्योतक हैं।

इस चराचर जगत में कोई भी कार्य अकारण नहीं होता। अतएव जो कार्य होता है उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। सूरदास को नागदमन घटना के कार्यकरण सम्बन्ध स्थापित करने की चिन्ता है। इसके परिणामस्वरूप वे इस प्रसंग के आलेखन हेतु श्रीमद्भागवत के अलावा अन्य कथा स्रोतों का विनियोग करते हैं, यदा-कदा अपनी सृजन क्षमता से मौलिक उद्भावनाएं भी कर लेते हैं। दृष्टांत रूप में कहा जा सकता है कि कालिनाग के कारण बदनाम यमुना तट पर ग्वाल-बाल के संग बालकृष्ण का गेंद खेलने जाने का कारण वर्णन। सूरदास ने इसके लिए नारद-कंस संवाद—लाखों की संख्या में कमल फूल लेकर मथुरा आने का आदेश-आदेश पालन न होने पर सर्वनाश के लिए तैयार रहने की तथा कृष्ण-बलराम को मथुरा में कैद करने की धमकी-ब्रज प्रदेश चिन्तित-शोक संतप्त ब्रजवासियों को शांति पहुंचाने हेतु बाल-ग्वाल के साथ कृष्ण का यमुना तट पर खेलने जाना...आदि। यह सारा इतिवृत्त सूरदास की मौलिकता का परिचायक है। जबकि नरसिंह को कार्यकरण सम्बन्ध प्रस्थापित करने की तनिक भी चिन्ता नहीं है। उनका कवि तो श्रीमद्भागवत में वर्णित कथा प्रसंग को ग्रहण कर विभोर हो उठता है। उनकी लेखनी को अन्य किसी बाहरी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं है। इसी के फलस्वरूप नरसिंह के काव्य में लाघव है तो सूर के काव्य में प्रसार। नरसिंह का यह लाघव उनका काव्य गुण बना जाता है तो सूर का यह प्रसार भी काव्य क्षति नहीं है। इसका कारण है दोनों के आलेखन की सम्पूर्णता।

दरअसल कवि वाकपटु तो होता ही है। लेकिन ''जल कमल छांडी जाने रे बाला'' पद का जहां तक सम्बन्ध है, कहा जा सकता है कि नरसिंह की वाकपटुता अद्वितीय है। साधारणतया घटना शब्द बनती है और शब्द स्वयं काव्य। नरसिंह के उल्लिखित पद में घटना (नागदमन) शब्द तो बनती ही है लेकिन जब शब्द संवाद में प्रयुक्त होते हैं तब काव्य बने हैं। इस पर से निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि नरसिंह की वाकपटुता ही उनकी सृजनात्मकता का तिलस्म है। नागरानी एवं बालकृष्ण के बीच जो संवाद होता है वह यकीनन श्रवणीय है। मेरा अभिप्राय है कि इस संवाद के फलस्वरूप ही यह पद आज पर्यन्त लोक-जिह्वाग्रे है। सामदाम दण्ड की नीति आजमा कर नागरानी इस मासूम शिशु को घर वापस लौटाने का भरसक प्रयत्न करती है लेकिन इधर तो हठी कृष्ण जो है, वह ईंटों का जवाब पत्थरों से बराबर देते जाते हैं।

इस प्रकार की चोटी की वाकपटुता सूरदास के इस प्रसंग के आलेखन में यदा-कदा ही दृष्टिगत होती है। किन्तु जहां भी इसके दर्शन होते हैं वहां-वहां हम इनकी काव्य कला के कायल हो जाते हैं।

नागदमन की इस घटना का एक तात्विक अर्थ भी है। इसमें कालि आसुरी शक्ति के तथा योगेश्वर कृष्ण सद्वृत्ति के प्रतीक हैं। यह संघर्ष जीवन पट पर, संसार मंच पर होता है। यमुना का प्रतीक है। इसमें सद् असद् दोनों अभिवृत्तियां निहित हैं। जब असद् पर विजय प्राप्त करनी होती है तब जीव को ज्ञान का सहारा लेना ही पड़ता है। यहां कदम्ब का पेड़ ब्रह्मज्ञान का प्रतीक है। इस पर चढ़े बिना आसुरी शक्ति को पराजित करना असम्भव-सा है।

सूर एवं नरसिंह के आराध्य यद्यपि एक थे तथापि दोनों के काव्य विषय एक नहीं हैं। सूर ने बालकृष्ण लीला को अपने काव्य का विषय बनाया है तो नरसिंह ने इस पक्ष को प्रायः नजरअंदाज किया है। इस विषय में डा. ललितकुमार पारिख लिखते हैं, ''सूरदास और नर्रसिंह मेहता की रचनाओं की सामान्य तुलना करने पर हम एक विशेष बात यह देखते हैं कि सूर ने वात्सल्य के पदों की रचना विस्तार और उत्साह से की है जबकि नरसिंह ने वात्सल्य पदों की रचना इतने विस्तार व उत्साह से नहीं की है। इसका मुख्य कारण यही है कि नरसिंह ने दिव्य द्वारिका में राधा-कृष्ण की जो लीला देखी थी उन्हीं में उनका मन अधिक रमता था और उनका निःसंकोच वर्णन करने का स्वयं भगवान का आदेश था इसी विश्वास को लेकर उन्होंने अपने साहित्य की सृष्टि की थी। सूरदास ने श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर भी अपनी अपूर्ण मौलिकता का परिचय दिया है। नरसिंह ने श्रीमद्भागवत से प्रेरणा प्राप्त की हो यह सम्भव है, किन्तु उन्होंने अपने काव्य के लिए उसे आधार बिल्कुल ही नहीं बनाया है।'' यही मौलिक अंतर नागदमन विषयक दोनों के काव्य में भी पाया जाता है।

संक्षेप में दोनों महाकवियों ने अपनी-अपनी भाषा में कृष्णकाव्य की मजबूत नींव डाली थी। गुजराती कवि नरसिंह ने पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को योगेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया तो हिन्दी कवि सूरदास ने इन्हें लीला पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किया है। □

'गुरदत्त कृपा'
जूनी माणेकवाडी, कान्त स्टूडियो के पास,
भावनगर-364001

*

योगदान

धर्मपाल

तुम से अब कुछ होता हवाता नहीं। पैसे भी नहीं गिन पाते। गाहक जान पहचान वाला था। तुम ने उसे दस रुपये का नोट थमा दिया। तुम्हारा क्या बिगड़ता है?"

लड़का बोलते-बोलते रुक गया। लड़के की जुबान छुरी की तरह चलती है। योगराज ने पोते की बात सुनी। आंखों को केन्द्रित करने का प्रयास किया। खिसया कर हंस दिया।

"दादा-तुम्हारी तरह दुकानदारी नहीं चलती। और भूखे मरना है? सही दाम बताकर खाक कमाया जाता है?"

योगराज ने गहरी जम्हाई ली। टूटे-फूटे दांतों का प्रदर्शन हो गया। मुंह के भीतर का दृष्य नितान्त सपाट है। पोते को प्यार से निहारा। "तेरी बातें मुझे अच्छी नहीं लगती। तुम अपने जमाने की बात चलाते हो। होंगे तुम्हारे जमाने के लोग ईमानदार। देश पर सब कुछ लुटाने वाले....।"

योगराज अक्सर पोते के ताने सुनता है। चुप रहता है बौखलाहट तो है उसके अन्तस में। इस गहरी सुरंग में पता नहीं क्या-क्या घुमड़ता रहता है? अनेक दृष्य भभक उठते हैं। कई बार से लगता है उसके चारों ओर दावानल है पूरे जंगल में विकराल रूप में फैलती हुई।

उस दिन जलूस में वह कितनी शान से बैठा था—वह अमरनाथ। जलूस ठीक दुकान के सामने से निकला था। अमरनाथ की जय-जयकार के नारे बाजार की संकरी सड़क के लिए भारी पड़ रहे थे। चारों और भव्यता का नंगा प्रदर्शन था। अमरनाथ ने एक बार भी उसकी ओर नहीं देखा-मानों दोनों की पहचान सर्वथा अर्थहीन थी। पतली गर्दन पर मालाओं का ढेर था। सारे दुकानदार अपनी दुकानों पर खड़े हो गए थे। केवल वह ही बैठा रहा था। जलूस थोड़ा आगे निकलने पर पोता बोला था—

"इतना बड़ा आदमी तुम्हारे सामने से गुजर गया—खड़े क्यों नहीं हुए?"

"इसे मैं जानता हूं" योगराज ने बुझी पलकें समेटते हुए कहा था।

"हां—तुम सारी बड़ी हस्तियों को जानते हो। तुम्हें कोई नहीं पहचानता। बाबू अमरनाथ तुम्हें जानता है फिर रुका क्यों नहीं?"

"वह इधर रुकने की हिम्मत नहीं कर सकता पोते?" स्वर में यकायक गरिमा समा गई।



"क्यों? तुम जरूर मेरी दुकान बन्द करवाओगे। अगर चन्दा मांगने आया तो?"

"खबरदार—एक पैसा भी नहीं देना।" वृद्ध के चेहरे पर पीड़ा की झलक थी।

"मैं तो कम से कम दो सौ रुपये दूंगा। दुकानदारी है मेरी। तुम तो बूढ़े हो गए हो दादा। तुम्हें दुकानदारी से क्या लेना? योगराज अचानक चुप हो गए। वे इसी तरह अचानक चुप हो जाते हैं। धुंध में लिपटी स्मृतियां उनके मानस पर लंगर डाल देती है। इन स्मृतियों में कितने सजीव हो जाते हैं—मानो उनके प्राणों में नई ऊर्जा का संचार हो गया है।

उन्हें अपने विगत के परिवेश में लौटना अच्छा लगता है। सार्थक महसूस करने लगते हैं। वे दिन ही ऐसे थे। आए दिन विदेशी ताकत से टक्कर लेना। उनसे जूझना। लाठी चार्ज, गोलियों की बौछार, सिपाहियों की मार सहना-सब कुछ सार्थक लगता था। लगता था वे अपने से बाहर किसी महान उद्देश्य के लिए जी रहे थे। अमरनाथ जैसे लोग भी थे इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को तटस्थ होकर देखा था। कई बार फिसले। गर्त में गिरे। लांछन सहे। कलंक लगे। पर बेशर्मी से अपने स्वार्थों से लिपटे रहे। हवा के बहाव के साथ-साथ बहते गए—अपने निजी लक्ष्य की ओर।

योगराज ने इधर-उधर देखा पोता दुकान पर नहीं था। धुंधली आंखें ज्यादा देख नहीं पा रही थीं। पर उन्हें आभास-सा था बाजार के कोने में अमरनाथ की सवारी ठहर गई है। उनका अनुमान सही था। पोता भीड़ में शामिल था। अमरनाथ की भव्यता में ईकाई की तरह खड़ा था। योगराज अचानक खड़े हो गए। मन में प्रबल वेग था और सारे शरीर में टूटन। समय की लताड़ बहुत विकराल होती है। सब कुछ डकार जाती है। समय की धुंधली परछाइयों में एक के बाद दूसरा आवरण गिरता है और फिर सब कुछ रसातल में चला जाता है—मानों वह सब था ही नहीं।

टूटते कदम, धुंधली आंखें लिए योगराज भीड़ की तरफ बढ़ गए।

मत दो इस आदमी को सम्मान। इसे मैं अच्छी तरह जानता हूं। यह बगुला भक्त है। यह आदमी मेरा देखा-भाला है।

योगराज के शब्द लार के साथ बह रहे थे। अमरनाथ ने आंखें फेर लीं। चेहरा दूसरी ओर घुमा दिया और सौम्य मुस्कराहट फैला दी।

सिपाही योगराज की ओर लपका तो एक आदमी बोला "यह लालू का दादा है। सठिया गया है। पता नहीं घर पर क्यों नहीं टिकता?"

तब तक लालू भीड़ से बाहर सरक आया था। दादा का हाथ थाम लिया। घसीटने लगा।

"दादा—न घर में चैन, न दुकान पर टिकते हो। दुकान चौपट करनी है? मंत्री की बेज्जती? हे भगवान—तुम्हारा दिमाग चल गया है?" लालू दादा को खींच रहा था। भीड़ का सारा ध्यान दुबारा मंत्री जी पर केन्द्रित हो गया था।

"अरे काहे को थूकता है बूढ़े पर? पागल है क्या लालू?"

सामने बैठे वृद्ध दुकानदार ने लालू को समझाने की कोशिश की। लालू ने गुस्से में तैरती आंखों से दुकानदार को देखा पर बोला कुछ नहीं।

"तेरा दादा इस मंत्री को जानता है। अच्छी तरह से जानता है बहुत पहिले से जानता है।"

लालू असमंजस में आ गया। चेहरे पर घिर आई लकीरें शून्य हो गईं। विचार श्रृंखला ने नया मोड़ लिया। सेलटैक्स दफ्तर के चक्कर पर चक्कर। श्रीमान जी के वैसे ही तेवर। चपरासी से तिरस्कार महीना भर हो गया उसे पूंछ हिलाते हुए। धन भी व्यय किया है पर...? ऊंट ठीक करवट नहीं बैठ रहा। दादा इस मंत्री को जानता है। सेलटैक्स इसी मंत्री की धरोहर है। लालू की मुखमुद्रा में चर्म बदलाव था।

"दादा—मैं शर्मिन्दा हूं। बड़ों का आदर सत्कार करना चाहिए। हांफ रहे हैं? पानी लाऊं?" योगराज वे सिर हिला दिया। लालू ने पीतल का पुराना गिलास उठाया और नल की ओर भागा। भीड़ का अवसान था। सवारी काफी दूर निकल गई थी। दुकानदार दुकानों पर वापिस आ गए थे। अचानक एक आवाज लालू के कानों में पड़ी। वह ठिठक गया।

—"अबे...ओ लालू...बूढ़े को सम्हाल कर रख। सेलटैक्स दफ्तर के चक्कर भूल गया? अब ये मंत्री खुंखार हैं। बेटे दुकान बिकवा देगा।"

लालू ने पलट कर देखा। लाला रामेश्वर दास था—कपड़े की दुकान का मालिक। उससे उम्र में बड़ा था। लालू ने ऐड़ी उठाकर उब्काई ली और आंखें तरेर कर बोला।

"ऐसे मंत्री बहुत देखे हैं नकेल डाल दूंगा।"

—"वाह बेटे!..."

"लो दादा जी...पानी पीओ। भूख लगी है तो बोलो। क्या लाऊं आपके वास्ते?"

बूढ़ा गहरी सोच में डूब गया। गले से पानी धीरे-धीरे नीचे उतार रहा था।

"थक गए हैं तो घर चले जावें। आराम करें। दुकान पर हूं न मैं..."

बूढ़े योगराज ने पलकें फड़फड़ाईं और लालू को प्यार से निहारा। लालू का पिता काम-काज के लिए अक्सर बाहर रहता है। दादा की देखभाल लालू पर है। लालू अक्सर दादा पर खीझता है। उसे कोसता है। पर उससे भयभीत भी रहता है। कभी-कभार दादा के चेहरे पर विलक्षण ओज आ जाता है, स्वर में दृढ़ता और मुट्ठियों में खिंचाव। ऐसे क्षणों में लालू दादा से अलग हो लेता है। जुबान नहीं चलाता। उसे दादा ने एक बार ऐसा लताड़ा था कि उसके रोंगटे खड़े हो गए। जुबान शब्द विहीन अटक गई। उसे

दादा के बारे में कुछ-कुछ याद है। एक बार उसके पिता ने कहा था।

—"लालू, दादा को मामूली आदमी मत समझना। आजादी की लड़ाई में लड़े थे। फतह हासिल की थी।"

लालू के मोटे चेहरे पर आंखे निस्तब्ध हो गई थीं। वह ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं। इस लड़ाई के बारे उसे बहुत कम पता है। दादा शायद चप्पल और छड़ी ढूंढ रहे थे। लालू ने दोनों लाकर थमा दीं।

"घर जाओ। जुलूस की तरफ क्यों आए। थक गए न?"

दादा बिना जवाब दिए चल दिए घर की ओर।

—छोटे कदमों से रास्ता मापते हुए। अमरनाथ का चेहरा उनके सामने स्पष्ट हो गया। इस आदमी का उस महान यज्ञ में योगदान था ही कहां? विरासत में मंत्री का ओहदा! कितने अलग-अलग रूपों में यह आदमी प्रकट हुआ है। सब कुछ उनके सामने है। कितने पैंतरे बदले हैं? दल बनाए हैं और बदले हैं? वे सब जानते हैं। यह आदमी लूटता भी दोनों हाथों से हैं। साथियों को भी मजे में रखता है।

"तुम देश के गद्दार हो बाबू अमरनाथ। दिया कम और हासिल बहुत कुछ किया।" उन्होंने इस आदमी पर शब्दों से सख्त प्रहार किया था।

"तुम क्या थे और क्या बन गए? मायावी हो। परन्तु वेश बदल लेते हो।"

वह खिसया कर रह गया था। हां इतना जरूर कहा था।

"तुम्हें किसने रोका है योगराज? तुम भी चाहो तो।"

उन्हें किसने रोका है? योगराज के कदम ठिठक गए। लालू के आदर सत्कार का मतलब वे समझते हैं। वे जानते हैं अमरनाथ उनकी बात नहीं टालेगा। पर? यह कैसा योगदान होगा देश के प्रति? उनका आन्तरिक ढांचा बिखरने लगा। क्या निरर्थक हो गए हैं वे? लालू का काम न किया तो?

सुबह दुकान पर जाना। लालू से उल्टी सीधी बातें सुनना। आहिस्ता-आहिस्ता घर आना। सब कुछ भिन्न भी हो सकता था। बहुत भिन्न—दूसरी तरह की विरासत। अमरनाथ की सवारी देख कर उनकी आंखों में खून उतर आया था। गले में फूलों के हार सर्प समान लगे थे। पर उन्हें लगा वे अपने योगदान से बहुत प्रसन्न हैं। उनका योगदान स्वच्छ है, निर्मल है—बिना किसी धब्बे के।

घर में घुसते ही अपने कमरे में चले गए। चारपाई का आश्रय लिया। जेल का कमरा इस कमरे से बहुत छोटा था। धूप नहीं आती थी। रात का सघन अन्धकार कमरे में लगे मकड़ी के जाल के साथ उलझ जाता था। उन दिनों वे सोचते बहुत थे। उन्हें अपने पर पूरा विश्वास था। पानी के कुछ घूंट गले के नीचे उतारे। स्मृतियों का तांता जुड़ने लगा—सड़क पर ठप्प यातायात जैसा।

आंख खुली। बाहर झांका। अन्धकार को उलझाती रोशनी है गली में। चारपाई पर उठकर बैठ गए। तिपाई पर चाय का प्याला है। लालू दुकान से आता होगा। सेलटैक्स के केस ने उसकी नाक में दम कर रखा है। हो सकता है अमरनाथ ने जान-बूझ कर केस उलझाया हो। पर किस लिए?

नीचा दिखाने के लिए? वे उसे बहुत बार बुरा भला कह चुके हैं, उसके पतन को रोशनी दिखा चुके हैं। लालू को बीच की बात का पता नहीं। वह उन दोनों के बारे में कुछ नहीं जानता। उसे पता नहीं कुछ लोग केवल संघर्ष के लिए जीते हैं। उनके चेहरे पर भव्य मुस्कराहट रच गई। लालू की चप्पलों की फटर-फटर घर में गूंजने लगी। आजकल वह अशान्त रहता है। घर के इधर-उधर चक्कर लगाता है। वह उनके कमरे की ओर आ रहा है। वे संयत हो गए। लालू के मोटे चेहरे पर भरपूर असमंजस है।

"दादा—आराम कर लिया?" लालू के स्वर में उत्तेजना है।

"सेलटैक्स का मामला फंसता जा रहा है, न चपरासी बात करता है—न श्रीमान फैसला करते हैं। चक्कर पर चक्कर..." लालू के नथूने फैल गए। चेहरे पर हल्का आतंक है।

योगराज मौन बैठे रहे। क्या जवाब दें पोते को। क्या कर सकते हैं वे? कर तो सकते हैं—पर अमरनाथ के आगे हाथ फैलाना? वह कांप उठते हैं।

"श्री चन्द बोलता है तुम अमरनाथ को जानते हो। तो जाते क्यों नहीं उसके पास?"

उनका इशारा अमरनाथ के लिए काफी है पर इस तरह की याचना? क्या व्यक्तित्व है इस आदमी का?

लालू फर्श पर पैर पटकने लगा।

"मैं तेरे साथ चलूंगा, दादा। कोठी के अन्दर तुम चले जाना। मैं बाहर रिक्शा में इन्तजार करूंगा।" लालू की चौड़ी नाक में श्वास गति तीव्र हो गई।

योगराज के मन में उथल-पुथल है। अमरनाथ इतने घटिया स्तर पर उतर सकता है? हां सोच सकता है। स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में भी उसके चेहरे पर मुखौटा था।

"किस चक्कर में हो दादा? क्या-क्या सोचते हो? काम करवाना है या नहीं? जवाब दो।" उनके चेहरे पर विलक्षण परिवर्तन है। एक असाधारण अभिव्यक्ति, दृढ़ निश्चय और आवाज में गरिमा। मुट्ठियों में कसाव। धुंधली दृष्टि लालू पर टिकी है। मौन टूटता है—"नहीं जाऊंगा अमरनाथ से मिलने। यह आदमी मेरे मिलने के लायक नहीं। समझे लालू?"

दादा के बोलने का ढंग अनूठा है। लालू छटपटा गया। कुछेक क्षण यूं ही बीते। फिर लालू यकायक फटफटाया।"

बापू झूठ बकता है—"दादा तुम बड़े आदमी नहीं हो।" □

13, हाउसिंग कालोनी, सोनीपत



समकालीन आलोचना

डा. सूरज पालीवाल

समकालीन जीवन जितना उथल-पुथल भरा है, उससे साहित्य भी अछूता नहीं है। साहित्य की चाहे कोई भी विधा हो, अपने वर्तमान से कटकर जीवित नहीं रह सकती, नहीं रह सकी है। छठे दशक में जब नई कविता और नई कहानियों का दौर था, तब स्वाधीनता का मोह भंग जीवन में घुमड़ रहा था और वह साहित्य में भी आया, पूरे जोर-शोर से आया। साहित्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा उसे व्यक्त करने और उसे मानव-जीवन के स्वप्नों की त्रासदी के रूप में चित्रित करने का रहा है। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध से उपजता विद्रोह तमाम साहित्यिक आंदोलनों और उनके द्वारा फैलाए गए भ्रमों से बचकर मानवीय विद्रोह के रूप में चित्रित हुआ और आज उसकी पहचान के लिए विद्वान चाहे कुछ भी नाम क्यों न दे दें, लेकिन वह है अपने युग की वास्तविकता और आवश्यकता। सोच और सोच के तमाम स्तरों पर हमें भारतीय जनता की चिंताधारा के दर्शन होते हैं। इस चिंता धारा से जो लेखक जितना गहराई से जुड़ा होगा, वह उसे अधिक मार्मिक ढंग से चित्रित कर सकेगा। मार्मिक चित्रण की वास्तविकता को आंकने का काम आलोचना करती है, वह देखती है साहित्यकार का सम्बन्ध उस संवेदना से कितना निकट और गहरा है। इसलिए आलोचना उसे और मार्मिक बनाती है, उसके बिम्बों, प्रतीकों को और विस्तृत करती है या उसके छद्म को अनावृत करती है।

आलोचक का काम रचना की व्याख्या करना है, उसके उन रहस्यों को सुलझाना है, जिन्हें रचनाकार अपने संवेदनात्मक ज्ञान के द्वारा बुनता है। आलोचना जीवन के मर्म को छूती है। इसलिए आलोचक रचना में पैठकर उस समाज की वास्तविकताओं को उजागर करता है, जिस समाज की अनिवार्यता में उसे देखा-समझा जाना जरूरी है। आलोचक के पास वह मर्मी आंख नहीं होगी, उसके पास वह संवेदना नहीं होगी, जिसका होना किसी भी आलोचक के लिए अनिवार्य है, तो आलोचना सतही ही होगी और वह न रचनाकार के साथ न्याय कर पाएगी और न उस समाज के प्रति जिस समाज में वह रचनाकार उत्पन्न हुआ। रचना के साथ तो ऐसी स्थिति में न्याय कर पाना संभव है ही नहीं। रचना जीवन की आलोचना है तो आलोचना रचना में व्यक्त जीवन की आलोचना। इसलिए आलोचक के पास वह दृष्टि आवश्यक है जिससे वह रचना में व्यक्त जीवन के छद्म और वास्तविकता से परिचित होकर रचना के महत्व को अंकित कर सके।

वर्तमान समय में रचना और आलोचना कर्म दोनों ही कठिन हैं। हुआ यह है कि रचनाकार के पास अपने आलोचक हैं और आलोचक के पास अपने रचनाकार। यह आपाधापी जिस अराजकता को जन्म दे रही है, उससे तात्कालिक वाहवाही तो मिल रही है, रचनाकार और आलोचक परस्पर महान भी बन गए हैं, लेकिन आलोचना का कोई मानदंड निर्मित नहीं हो रहा और न रचना ही अपना प्रभाव छोड़ पा रही है। सतही जीवन आकांक्षाओं और सतही जीवन मूल्यों को लेकर कोई भी रचना और आलोचना महान नहीं बन सकतीं। गोस्वामी तुलसी दास की रचना ने यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक दिए तो आचार्य शुक्ल की उच्च जीवन-आदर्शों और साहित्यिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए की गई आलोचना-मानदंडों ने डा. राम बिलास शर्मा जैसे मेधावी आलोचक दिए। यह आलोचना की जीवन-संपृक्ति और बृहत्तर जीवन दर्शन का अद्‌भुत नमूना है।

हमारे कुछ मूर्धन्य आलोचक विदेशी प्रभाव की रट लगाकर उस ज्ञान से अनजान बने रहना चाहते हैं जो पश्चिम के प्रबुद्ध साहित्य चिंतकों और समाजचिंतकों ने विश्व को दिया। कहा यह जाता है कि ज्ञान तो कहीं से भी मिले उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है। लेकिन ये मूर्धन्य आलोचक ऐसा नहीं मानते। उनकी दृष्टि में संस्कृत साहित्य ही पर्याप्त है। माना कि संस्कृत

पत्रिकाओं से जुड़ाव और निरंतर पुस्तक समीक्षा के बल पर साहित्य में आचार्य शुक्ल बनने वालों को यह समझना चाहिए कि आचार्य शुक्ल, रामबिलास शर्मा एवं मुक्तिबोध आदि के साहित्य कर्म में जो गहराई है और चिंतन की जो बारीकी है वह एक दिन में नहीं आ गई। वह निरंतर चिंतन और अध्ययन से प्राप्त हुई जिसका अनुसरण उनके लिए आवश्यक है।

आचार्यों ने अपने हजारों साल के चिंतन के बाद जो मूल्य निर्धारित किए हैं, वे निश्चित ही हमारे लिए गौरव के विषय हैं। लेकिन समाज जिस गति से बढ़ रहा है, ज्ञान-विज्ञान भी उसी गति से बढ़ना चाहिए, तभी दोनों का तालमेल सम्भव है। यह विचित्र स्थिति है कि अमेरिका, जापान में बनी इलेक्ट्रोनिक्स वस्तुएं तो हमें बहुत अच्छी लगती हैं, उनकी अत्याधुनिक तकनीक हमें चित्ताकर्षक लगती है लेकिन विदेश का साहित्य चिंतन हमें बहुत पराया और बुरा लगता है। यह कहीं हमारी हीन भावना का प्रदर्शन तो नहीं करता। यदि ऐसा नहीं है तो विदेशी साहित्य चिंतन की महत्ता को भी हमें निर्विवाद रूप में समझना होगा। खुली आंखों से उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को परखकर लेना होगा।

असल में, बात विदेशी साहित्य की नहीं है। बात है मार्क्सवाद की। मार्क्सवादी साहित्य चिंतन चाहे वह भारतीय जन-जीवन के

कितने ही अनुरूप हो उसे स्वीकार नहीं करना, लेकिन अमेरिकी और पश्चिमी देशों के हत्या, बलात्कार एवं छद्म के साहित्य को स्वीकार करने में किसी प्रकार का उज्र नहीं होना हमारी संकीर्णता को बताता है। यह संयोग ही है कि आज जिन बड़े आलोचकों के नाम गिनाए जाते हैं उनमें अधिकतर मार्क्सवादी ही हैं। डा. राम बिलास शर्मा, डा. नामवर सिंह, डा. रमेश कुंतल मेघ, डा. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आदि नाम उन्हीं मार्क्सवादियों के हैं जिन्होंने अपने अध्ययन और चिंतन के बल पर हिंदी आलोचना को समृद्ध किया है। स्व. मुक्तिबोध जो आज हिंदी आलोचना के केंद्र में हैं, मार्क्सवादी ही थे। फिर भारतीयकरण के नाम पर विदेशी प्रभाव से बचने और उस ज्ञान-धारा से बचने का छद्म क्यों? यह छद्म हिंदी आलोचना को कोई महत्वपूर्ण उपलब्धियां नहीं दे सकता। इसलिए इसका प्रतिकार करना होगा और आलोचना के उन मूल्यों को अपनाना होगा, जिनके बल पर उसका विकास हो सके।

हिंदी आलोचना को वादों से उतना खतरा नहीं है, जितना साहित्य को समग्रता में न समझ पाने वाले तथाकथित आलोचकों से। समग्र दृष्टि के अभाव में कोई भी आलोचना किसी भी साहित्य के साथ न्याय नहीं कर सकती। यह समग्र दृष्टि निरंतर अध्ययन और चिंतन से प्राप्त होती है, जिसका आज प्रायः अभाव है इसलिए पुस्तक समीक्षा का धंधा जोरशोर से पनप रहा है। पुस्तक समीक्षा के लिए न अपनी परम्परा का अध्ययन आवश्यक है और न उसका सुचिंतित ज्ञान ही। पत्र-पत्रिकाओं ने इस धंधे को और शह दे दी है जिसके कारण साहित्य के समग्र अध्ययन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण उभर रहा है। पत्रिकाओं से जुड़ाव और निरंतर पुस्तक समीक्षा के बल पर साहित्य में आचार्य शुक्ल बनने वालों को यह समझना चाहिए कि आचार्य शुक्ल, रामबिलास शर्मा एवं मुक्तिबोध आदि के साहित्य कर्म में जो गहराई है और चिंतन की जो बारीकी है वह एक दिन में नहीं आ गई। वह निरंतर चिंतन और अध्ययन से प्राप्त हुई जिसका अनुसरण उनके लिए आवश्यक है। पुस्तक समीक्षा को कैसे सर्जनात्मक बनाए रखना चाहिए, यह मुक्तिबोध, साही, मलयज एवं अज्ञेय आदि से अच्छी प्रकार सीखा जा सकता है।

हिन्दी का यह भी दुर्भाग्य है कि रचनाकार और आलोचकों में खुले दिमाग से बातें नहीं हो पा रही हैं। समीक्षा और आलोचनाओं का एक डर-सा बैठ गया है। एक खेमा दूसरे खेमे के लेखक की किरकिरी करने में आनंद का अनुभव करता है। एक प्राचीन ज्ञान के बल पर अपने अहं को ताने बैठा है तो दूसरा विदेशी पत्र-पत्रिकाएं पढ़कर नई आलोचना के झंडे गाड़ने में अपने अहं का प्रदर्शन कर रहा है। एक-दूसरे को समझकर, एक-दूसरे की अच्छाइयों और बुराइयों पर चर्चा करने के बाद जिस साहित्य का विकास हो सकता है, उसकी उपेक्षा की जा रही है। यह स्थिति खतरनाक है। यह स्थिति स्वयं उस व्यक्ति के विकास को रोकती है साथ ही साहित्य के विकास में भी रोड़े लगाती है। इस दृष्टि से डा. रामबिलास शर्मा और डा. नामवर सिंह में जो परस्पर लेखन की होड़ चल रही है, वह साहित्य के लिए सुखद है। 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', 'भारतेंदु और हिंदी नवजागरण की समस्याएं', 'लोक जागरण और हिन्दी साहित्य' के साथ 'दूसरी परम्परा की खोज' एवं 'वादविवाद संवाद' जैसी पुस्तकें इसी होड़ के कारण पाठक तक पहुंच रही हैं। यह ईर्ष्या नहीं है। यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा है, यह प्रगतिशील खेमे से फेंकी जा रही गोला-बारूद नहीं है, जो ऐसा सोचते हैं वे साहित्य की स्वस्थ परम्पराओं से अनजान हैं। अच्छे साहित्य का प्रणयन और स्वस्थ आलोचना का विकास ऐसी स्पर्धाओं में ही संभव है। ऐसी स्पर्धाएं तभी संभव हैं जब दोनों पक्ष अध्ययन-चिंतन के प्रति समर्पित हों। लेकिन हिंदी का नया रचनाकार और आलोचक या तो अपने मित्रों की रचनाओं-आलोचनाओं को पढ़ता है या फिर अपनी विचारधारा से सम्बद्ध रचना आलोचनाओं को। परिणामतः साहित्य की विपुल क्षमताओं से वह अपरिचित रहकर एक घेरे में बंद हो जाता है। इसलिए मार्क्सवादी चिंताधारा से जुड़े लोग गंभीर अध्ययन के प्रति समर्पित रहते हैं, जो अच्छी बात है। अध्ययन हमारे ज्ञान को समृद्ध करता है, जीवन दृष्टि को मांजता है और लेखन-शैली का विकास करता है।

समकालीन आलोचना को तमाम घेरों को तोड़ना होगा। उसे इस दलदल से निकलकर स्वस्थ राजमार्ग पर चलना होगा, तभी उसका विकास संभव है। पश्चिम में जिन विचारधाराओं का जन्म हो रहा है, जो विचार जनमानस में घुमड़ रहे हैं, उनसे किनारा करके बैठे रहना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आलोचक के पास समग्र दृष्टि तभी आएगी, जब वह खुले दिमाग से रचना-आलोचनाओं को पढ़े, उनकी परम्परा से परिचित हो तथा अपने मानस को नई दिशा में सक्रिय करे। समकालीन आलोचकों में इसका अभाव है। इसलिए नई पीढ़ी का कोई समर्थ आलोचक दिखाई नहीं पड़ रहा है। यह अभाव और यह चिंता हर साहित्य के विद्यार्थी की है। पुस्तक समीक्षा को गंभीर कर्म मानकर उसे अपने-पराए के घेरे से निकालना होगा, पत्र-पत्रिकाओं के मित्रों की वाह-वाही से साहित्य को गंभीर पाठक की चिंता और शुभकामनाओं से परिचित होना होगा, संस्कृत साहित्य से लेकर आज तक के विदेशी-देशी ज्ञान से परिचित होना होगा, नए रचनाकारों की रचनाओं में जो जीवन-संघर्षों की आग की चिनगारी सुलग रही है, उससे अपने मानस का विकास करना होगा, तभी हिंदी आलोचना का विकास हो सकता है और समकालीन आलोचना के मार्ग में आए अवरोधों को साफ किया जा सकता है। यह कार्य कठिन है, कोई भी बड़ा कार्य कठिन होता भी है। यह तो एक चुनौती है, इसे स्वीकार करके ही हिंदी आलोचना को आ. शुक्ल की परम्परा से जोड़ा जा सकता है। पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को भी इस दिशा में कदम उठाना चाहिए, इससे उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और साहित्य के गंभीर पाठकों का भी जन्म होगा। जो काम भारतेंदु और प्रेमचंद ने किया, आज उसकी फिर से आवश्यकता है, ताकि इस धुंध से उबरा जा सके। □

दुर्गा निवास,
पावटा सी रोड,
जोधपुर 342010

परिवर्तन की बाट जोहते बैगा आदिवासी

एस. अहमद

बैगा...शब्द अपने आपमें रहस्य से भरा हुआ है। ज्यादातर आदिमजातियों में बैगा गांव के उस व्यक्ति को कहा जाता है जो कि पूरे गांव का स्वास्थ्य रक्षक होने के साथ-साथ आसमानी विपदाओं से सावधान करता है और उनसे बचने के उपाय भी बताता है। अमूमन बैगा प्रत्येक गांव में होता है। एक लिहाज से बैगा का पूरे समाज पर नियंत्रण रहता है। बिना उसकी मर्जी के कोई कार्य सम्पन्न होना असंभव होता है। वह बीमारी का इलाज करता है, भूत बाधा दूर करता है और समय-समय पर वह भविष्यवाणियां भी करता है। कभी-कभी उस पर देवी का वास भी होता है। अक्सर देखा गया है कि बैगा गांव का सबसे गुणी और चतुर व्यक्ति होता है जो कि दैविक आत्माओं को अपने कब्जे में रखने का ढोंग करके पूरे गांव को आतंक और भय के साए में रख कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है।

लेकिन मध्य प्रदेश में मंडला जिले में बैगा नामक एक जनजाति भी निवास करती है जो कि प्रदेश की आठ अल्प विकसित अति प्राचीन जनजातियों में से एक है जो आज भी अपनी आदिम पहचान को बनाए हुए जी रही है। बैगाओं की उत्पत्ति के संबंध में कई मिथक प्रचलित हैं। रसेल और हीरालाल के अनुसार संसार की शुरुआत में भगवान ने नागा बाबा और नागा बैगिन को बनाया। वे दोनों जंगल में रहने लगे। आगे चल कर उनकी दो संतानें हुईं। उन दोनों संतानों ने आपस में विवाह रचा लिया। और इन्हीं से मनुष्य जाति का विकास हुआ। यह कथा धरती के प्रारंभ से पहले की है इसलिए बैगा नागा बाबा की पूजा-अर्चना करते हैं। नागा बैगा पृथ्वी को अपनी पुत्री मानते थे। इसलिए उनके अनुयायी बैगा धरती पर हल नहीं चलाते। जंगल काट कर बेवर खेती करते हैं।

बैगा जंगलों और पहाड़ों के वासी हैं। वे हमेशा प्रकृति की गोद में रहते हैं। बैगाओं का मूल आवास मंडला जिला है लेकिन इसके अलावा बालाघाट, सरगुजा, राजनांदगांव और अमरकंटक के पहाड़ी इलाकों में रहते हैं, उन्नीस सौ इकहत्तर की जनगणना के अनुसार मंडला में 48803, बालाघाट में 12379 और सरगुजा में 10057 बैगाजन थे। वेरियर एल्विन ने बैगाओं को भूमिया जन जाति की उपशाखा माना है।

बैगा कुदरत के खूबसूरत नजारों को नजदीक से निहारते हैं। जंगलों की हरियाली उनके आंगन में हमेशा पसरी रहती है। प्रकृति का खुला-खुला वातावरण और सरसराती बनेली हवा के जैसा स्वभाव होता है बैगाओं का। वह नदियों और झरनों के खनकते स्वरों से गीतों की प्रेरणा लेते हैं। नृत्य तो जंगलों की आदिम परंपरा है। इस लिहाज से देखा जाए तो बैगा वर्ष भर नाचते ही रहते हैं।



ऊंचे आसमान से बातें करते पहाड़ों से वे लेते हैं स्वाभिमान से जीने की ललक और जंगल के जीव जन्तुओं से उनके रिश्ते बिल्कुल मनुष्यों की तरह हैं। उनके लिए पहाड़, जंगल, नदी, बादल, धरती सब पूज्य हैं। जंगल, बादल वर्षा देते हैं, धरती इनको खाने के लिए अन्न देती है। बैगा गीतों में इन सब के लिए आभार होता है।

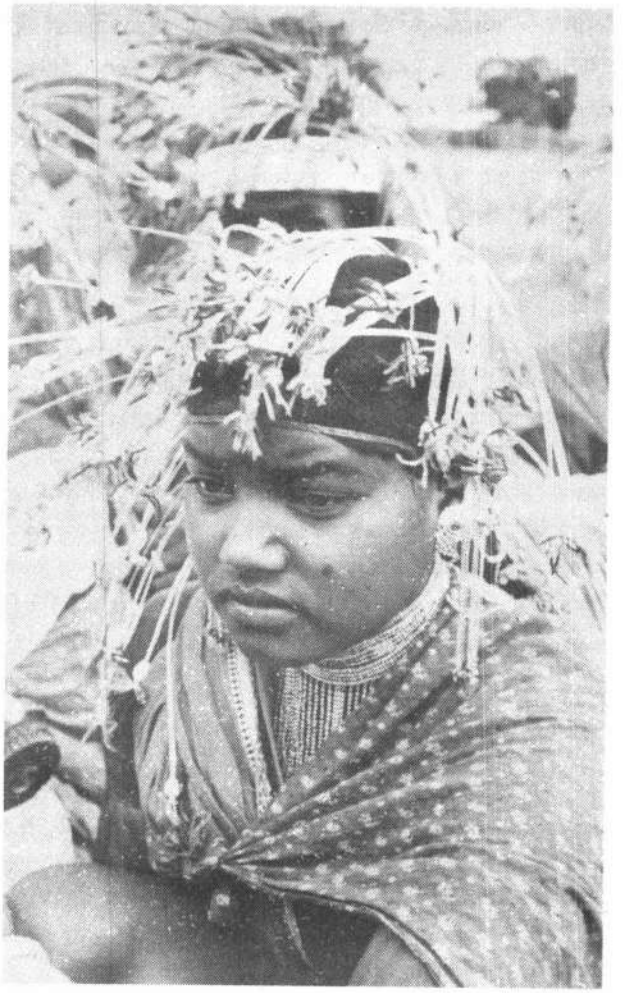
बैगा बहुत से देवी-देवताओं को मानते हैं। ठाकुर देव प्रायः इनके सभी गांव का देवता है। इसके अतिरिक्त खैरमाई, रातमाई, बढ़ेश्वर देव और नारायण देव की पूजा बैगा लोग खास तौर से करते हैं।

ज्यादातर बैगा प्रकृति के नजदीक रहते हैं इसलिए इनके पर्व, तीज-त्योहार प्रकृति के परिवर्तन के साथ जुड़े रहते हैं। हरेली, दशहरा, दीवाली, फाग बिदरी, छेरता और ज्वांरा वर्ष भर मनाते हैं। इनमें कुछ त्योहार तो आर्य संस्कृति की देन हैं और कुछ पर्व बैगाओं की ठेठ परंपरा की। छेरता त्योहार मूलतः बैगा बच्चों का त्योहार है। गांव के लड़के-लड़कियां साधू भेस में घर-घर जाकर छेरता मांगते हैं।

बैगा आदिवासियों का खान-पान सादा ही कहा जाएगा। ये लोग बारह माह कोदो-कुटकी और मक्का का पेज पीते हैं। बैगा मांसाहारी होते हैं। शिकार से हासिल पशु-पक्षियों का मांस भी खाते हैं। बैगा आदिवासियों में शव को जलाने और दफनाने की दोनों प्रथाएं हैं। बैगा लोगों का श्मशान अधिकतर नदी के पार होता है। इसके पीछे इनका विश्वास है कि भटकी हुई आत्मा नदी पार करके गांव में प्रवेश नहीं कर सकेगी। शव यात्रा खाट पर निकाली जाती है।

बैगा जनजाति की महिलाओं में गोदना के प्रति प्रेम संभवतः संसार की किसी भी जनजाति से अधिक ही है। गोदना पांच साल की आयु से शुरू होकर शादी होने तक चलता रहता है। शरीर का कोई अंग नहीं बचता जहां बैगा महिलाएं गोदना नहीं गोदवाती हों। छाती, पीठ, पांव, जांघों, हाथ, पौहंपी आदि गरज यह कि बैगा युवती का पूरा शरीर गोदने से अलंकृत हो जाता है। वह इनके शरीर की शोभा है। बैगा जाति की मान्यता है कि गोदना नहीं गुदवाने पर मरने के बाद भगवान गर्म सब्बल से शरीर को गोदते हैं। वे यह भी मानती है कि मरने के बाद शरीर के साथ केवल गोदना ही जाता है बाकी सारे अलंकरण यहीं रह जाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से पूरे शरीर पर गोदना होने के कारण बैगा महिलाएं बादी और गठिया के रोग से मुक्त रहती हैं।

पिछले दिनों मुझे बैगाचक के इलाके में जाने का मौका मिला। रास्ता कच्चा और धूल भरा था। गर्मियों के शुरुआती दिन, कहने को अभी मुश्किल से दस बजे थे लेकिन हवा में लू का असर आ गया था। चारों तरफ जंगलों का विस्तार था। चिल्फी की पहाड़ियों में चारों तरफ जंगल है लेकिन कटाई की मार से छितरा गया है। किसी-किसी जगह तो सड़क छोड़-छोड़कर एक किलोमीटर अंदर जाओ तो जंगल के नाम पर झाड़ियां ही मिलेंगी। जिस रास्ते पर हम लोग चल रहे थे वह जंगल विभाग का था, जो कि लकड़ियों की ढुलाई के लिए बनाया गया था। इस पूरे इलाके में आवागमन का कोई साधन नहीं बस जो कुछ है वह



लकड़ी ढुलाई करने वाले ट्रक, उनकी मर्जी हुई तो लिफ्ट मिल गई वर्ना जाइए पैदल। शायद आवागमन की सुविधाएं न होने के कारण ही इधर के आदिवासी अभी भी आदिम जमाने की मान्यताओं को ओढ़े हुए जी रहे हैं। कहने को बैगा विकास प्राधिकरण का गठन हो चुका है लेकिन फिलहाल कुछ भी ऐसा नहीं हो रहा है जिसे उल्लेखनीय कहा जा सके।

टट्टू की सवारी शायद ही कहीं देखने को मिले लेकिन बैगाचक की पट्टी के बाजारों में व्यापारी आज भी टट्टू पर सवार होकर ही आते हैं।

कहने को हमारा देश अब इक्कीसवीं सदी में जाने के लिए अपने कदम बढ़ा चुका है परन्तु अभी भी देश के बहुत से क्षेत्र काफी पिछड़े हुए हैं। बैगाचक एक ऐसा ही क्षेत्र है। जब मैं इस इलाके में घूम रहा था तो मैंने देखा कि उस दिन तरेगांव का बाजार था, तरेगांव एक निपट देहाती गांव है। ब्लाक मुख्यालय से तीस किलोमीटर दूर सतपुड़ा की पहाड़ियों के बीच घिरा हुआ। आवागमन का कोई निश्चित साधन नहीं है। वन विभाग के लकड़ी ढुलाई के ट्रक ही काम आते हैं आने-जाने के लिए। बाजार में लगभग दस गांव के लोग सौदा-सुल्फ लेने आते हैं जिनमें पहाड़ों के कुछ गांव भी शामिल हैं। दलदली, बदना, कुवरापानी, अमेरा, दुल्लापुर आदि गांव के बैगा आदिवासी वस्तु-विनिमय करने आते हैं इस बाजार में। अमूमन बैगा सुन्दर नहीं होते।

ज्यादातर श्याम वर्ण ही होते हैं। अपवाद स्वरूप गेहूंआं और किसी हद तक गोरे रंग के भी मिल जाते हैं। लेकिन तरेगांव के बाजार में मुझे कुछ सुन्दर बैगा लड़कियां और लड़के देखने को मिले। लड़कों के चेहरे मुरिया आदिवासियों से मिल रहे थे तथा उन्हीं के समान इनकी वेश-भूषा थी। उल्लेखनीय है कि बैगा आदिवासी अपने बाल नहीं कटवाते हैं वे महिलाओं के समान लम्बे बाल रखते हैं जिनको एक कौवे के समान जूड़ा बांध कर रखते हैं।

बैगा भी औरों की तरह परिवर्तन चाहता है, उसमें भी प्रगति की ललक है। लेकिन निश्चित योजनाएं न होने के कारण इनके बीच जो परिवर्तन आ रहा है वह केवल मात्र है शहरीपन की अंधी नकल। हाट-बाजारों में पहुंचने वाले सामानों में मुख्यत: प्लास्टिक की चूड़ियां, तथा नकली आभूषण और रंगीन रिबन आदि की भरमार थी। कुछ नर्तक दलों में शामिल बैगा आदिवासी भोपाल और दिल्ली के चक्कर काट आए हैं। पायजामा और पेंट कमीज पहनने लगे हैं और शासन इस बदलाव को सम्पूर्ण परिवेश के परिवर्तन के रूप में आंक रहा है।

पूरे बैगाचक में दो-चार ही ऐसे व्यक्ति मिले जिन्हें अक्षर ज्ञान था। वरना सारे के सारे अंगूठा छाप ही हैं। ये और बात है कि गांवों में स्कूल दिखाई दिए जिनमें कुछ बच्चे मिले पढ़ते हुए।

अक्सर देखा गया है कि आदिवासी अपनी रूढ़ियों तथा अशिक्षा के चंगुल में फंसे रहने के कारण शोषण का शिकार होता रहा है और बिचौलिया फायदा उठाता रहा। भोले-भाले आदिवासी अपने शोषण के खिलाफ कभी भी संगठित नहीं हो पाते हैं। और कभी हुए भी तो उनको बुरी तरह कुचल दिया जाता है। चाहे वह संथाल परगना का आंदोलन हो या बस्तर का, आदिवासी हमेशा से पिसता चला आ रहा है।

केवल बैगा ही नहीं बल्कि देश के तमाम आदिवासी समूह तथाकथित सभ्यता की मार को हजारों वर्षों से सहते आ रहे हैं। लेकिन क्या इनका विकास सही मायने में हो रहा है। शायद नहीं, बल्कि यह कहना उचित होगा कि अब विकास की प्रक्रिया इनके लिए वरदान न होकर अभिशाप की तरह दिखाई दे रही है। वो जंगल जो हजारों वर्षों से इनके जीने का आधार थे इनसे छीन लिए गए। आदिवासी इलाकों में गैर आदिवासी लोगों का दखल लगातार बढ़ता चला जा रहा है। उनका शोषण भी बढ़ता जा रहा है। बैगाचक के कई गांवों में यौन विकृति से उत्पन्न रोगों का होना इस बात का सबूत है कि शोषण की जड़ें किस हद तक पैठ चुकी हैं।

आज बैगाचक के आदिवासी शोषण तथा संकट के दौर से गुजर रहे हैं। शिक्षा का प्रचार उन तक नहीं पहुंच पाया है साथ ही रोजी-रोटी का दूसरा विकल्प भी इनको नहीं मिला और न ही प्रबंध और नेतृत्व। इस अभाव ने उन्हें सब ओर से उपेक्षित कर रखा है।

हां एक बात जरूर है कि भूख, शोषण और तथाकथित विकास की दोहरी मार के शिकार बैगा आदिवासी अपनी कला में कुछ सुकून पा लेते हैं। कैसी भी विषम परिस्थिति क्यों न हो उनके गीतों से जंगल गूंजा करते हैं। वे अपने दु:ख-दर्द को नृत्य की जयताल के बीच भुला देते हैं। ये नृत्य और गीत न केवल उनके मनोरंजन का साधन हैं वरन् शिक्षा का माध्यम भी हैं। लेकिन क्या ये बैगा आदिवासी इसी तरह अपने दुख-दर्द को नृत्य और गीतों की लय और ताल के बीच भुलाते रहेंगे...? □

एच-1, शांति नगर
रायपुर, मध्य प्रदेश
पिनकोड-492001

अच्छा घर

अशोक भाटिया

अरसे से वे एक अच्छे घर की तलाश में हैं। एक बार वे हमारे पड़ोस में भी आए। ओजसिंह के घर को देखते हुए वे उनके हैसियत के कुएं में बाल्टी डालकर आजमाते रहे—कितना पानी है?

जब बात कुछ जंच गई तो सुमन जी बोले—"बाकी सब अच्छा है, लड़की पढ़ी-लिखी समझदार है।"

"जी यह तो आपकी दृष्टि अच्छी है। बाकी कोई और बात हो तो अभी तय कर लेते हैं।"

"नहीं-नहीं, जिसने लड़की दे दी, समझो सब कुछ दे दिया।" यह सुनकर ओजसिंह के हाथ अपने-आप जुड़ गए। वक्त देखकर सुमन जी ने सोफे पर पासा बदलते हुए कहा—"हां, एक वो रेडियो होता है जिसमें तस्वीरें आती हैं—वो दे देना—बच्चों के काम आएगा।"

ओजसिंह के हाथ जुड़े रह गए।

"एक बोतलें ठंडी करने वाला बक्सा भी दे देना—बच्चों के काम आएगा।"

ओजसिंह के हाथ खुलने लगे।

"और हां, तेल से चलने वाली साईकिल तो दोगे ही—घूमने-फिरने में ठीक रहती है।" कहकर सुमन जी हंस दिए। दीवार से सीमेंट का बड़ा टुकड़ा उनके पास आकर गिरा था।

ओजसिंह ने उठकर हाथ जोड़ दिए—"सुमन जी, हम इस लायक नहीं हैं। आप कोई और अच्छा घर देखिए।"

थुल-थुल, सुमन जी तेजी से चले गए। तभी एक भिखारी ने गिड़गिड़ाते हुए भिक्षा-पात्र भीतर बढ़ाया—"कुछ दे दो, अंधा हूं।"

ओजसिंह ने कहा—"कोई और घर देखो।" □

हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
करनाल-132001

पुस्तक समीक्षा

हमारे पथ प्रदर्शक

डा. रणवीर रांग्रा

पिछले तीन वर्षों में उपराष्ट्रपतिजी ने देश के विभिन्न भागों में समय-समय पर आयोजित समारोहों में भारत की अनेक महान विभूतियों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपने सारगर्भित और प्रेरणाप्रद विचार व्यक्त किए हैं। यह पुस्तक उन्हीं भाषणों का संग्रह है।

इसमें महामना मदनमोहन मालवीय, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी से लेकर हरेकृष्ण महताब तक सैंतीस लोकनायकों की जीवन-झांकी मिलती है और राष्ट्र के प्रति उनकी अनन्य देन का प्रभावोत्पादक परिचय भी। इसमें लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, डा. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, बाबा साहब आम्बेडकर—जैसे क्रांतिकारी महापुरुष तो हैं ही, साथ ही पं. गोविन्दबल्लभ पन्त, लाल बहादुर शास्त्री, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव—सरीखे चिंतक-जननायक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—जैसे शीर्षस्थ साहित्यकार और डा. सी. वी. रमन—समान मूर्धन्य वैज्ञानिक भी सम्मिलित हैं।

डा. शर्मा का विश्वास है कि जिस प्रकार इन प्रेरक व्यक्तियों के सान्निध्य में स्वयं उन्होंने अपने मन, मस्तिष्क और मनीषा को समृद्ध किया है और उनके मार्ग-दर्शन में जनता-जनार्दन की सेवा में अपने को डुबो दिया है, उसी प्रकार आज का जन-मानस भी, विशेषकर आज का युवावर्ग, इन ज्योतिपुंजों के प्रकाश में अपनी खोई हुई पहचान को फिर से पाकर देश को अन्धकार के गर्त से निकाल सकता है। इन भाषणों में उनकी यही चाह बार-बार व्यक्त हुई है, मानो राष्ट्र के भावी नायकों का सही पथ-प्रदर्शन कर, वे अपने प्रति उन महान आत्माओं के उपकारों से उऋण होना चाहते हों।

ये रेखाचित्र इस बात की भी गवाही देते हैं कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और सामाजिक न्याय—जैसे विषयों के गहन अध्येता और अनुभवी जन-नायक होने के साथ-साथ साहित्य में भी डा. शर्मा की पैठ तात्विक और अनुपम है। प्रसाद जैसा प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकार अपने युग के प्रति असजग नहीं हो सकता। यह बात अवश्य है कि उन्होंने अभिव्यक्ति की अपनी अलग शैली तैयार की। इस शैली में एक ओर भावों की उच्चता है तो दूसरी ओर भाषा की उदात्तता है। इन दोनों के मिलने से उनकी रचनाओं में कभी-कभी दुर्बोधता और कुछ-कुछ अस्पष्टता-सी आ गई है, लेकिन केवल इसी आधार पर उनकी सामाजिकता और प्रासंगिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मुझे लगता है कि प्रसादजी का सही मूल्यांकन होना अभी शेष है।

इन चरितांकनों में डा. शंकरदयाल शर्मा ने चर्चित महानुभावों के जीवन की जिन घटनाओं, स्थितियों-परिस्थितियों को चुना है, उनके व्यक्तित्व के जिन गुणों और विशिष्टताओं का उल्लेख किया है, उनसे वे अपना सायुज्य स्थापित कर चुके हैं। उनकी रीति-नीति को, शिक्षा-दीक्षा को अपने जीवन में उतार चुके हैं तथा ये विशिष्टताएं उनके अपने नित्य-प्रति के आचरण का अंग बन चुकी हैं। अतः यह कहना असंगत न होगा कि इन चरितांकनों में अपनी आराध्य विभूतियों को चित्रित करते-करते उपराष्ट्रपति जी स्वयं भी उनमें प्रतिबिम्बित हो उठे हैं। कुल मिला कर यह पुस्तक आधुनिक भारतीय मनीषा के प्रति समूचे राष्ट्र की सुगंधभरी पुष्पांजलि है। □

सी-7/80, नवीन निकेतन,
एस.डी.ए., नई दिल्ली-110016

सागर पार का संसार

पुस्तक : सागर पार का संसार (यात्रा वृत्त); लेखिका : डा. शशिप्रभा शास्त्री; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, मूल्य : पचास रुपये।

डा. शशिप्रभा शास्त्री अच्छी कथा-लेखिका, समीक्षिका और प्राचार्या हैं। सन् 1986 में उन्होंने अमेरिका-यात्रा की और वहां लगभग एक वर्ष तक रहीं। अपने प्रवास काल के खट्टे-मीठे अनुभव और अनुभूतियों को शब्दांकित करने के संग-साथ ही उनके आलोचक ने वहां के भौतिक जीवन की विडम्बनाओं और विसंगतियों को समझने-बूझने की चेष्टा भी की। लेखिका का मानना है—"हमारी प्राचीन सभ्यता-संस्कृति के समक्ष उनके देश के निर्माण की अवधि अपेक्षाकृत छोटी होते हुए भी वहां के लोगों ने सभ्यता-शिष्टता-संस्कृति के जिस स्वरूप का निर्माण किया है वह स्पृहणीय है। ईमानदारी, अनुशासन, लगन, निष्ठा और अपनी नियमित दिनचर्या के बल पर उन्होंने औद्योगीकरण के क्षेत्र में जिन ऊंचाइयों का स्पर्श किया है वह मननीय है।" लेखिका अपने प्रवास काल के अनुभवों-अनुभूतियों को कहीं तो यात्रावृत्त के रूप में, कहीं संस्मरण के रूप में, तो कहीं कथात्मक रूप में पृष्ठांकित करती जाती हैं। इसी प्रकार जहां कहीं वे वहां की प्रकृति या निवासियों के किसी गुण या खूबी पर रीझती हैं तो उनको कविता जैसी शैली में प्रस्तुत करने लगती हैं और कहीं पर वैचारिक स्तर पर आरूढ़ होकर निबंधात्मक फार्म में भी अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करती चली जाती हैं।

डा. शशिप्रभा शास्त्री ने अपनी इस पुस्तक के प्राक्कथन में इसे 'यात्रावृत्त के साथ औपन्यासिक कृति भी' स्वीकारा है। इसमें संवाद, चरित्रांकन, औपन्यासिक शैलीप्रवाह, कल्पना-अनुभूति सब कुछ है—ऐसा उन्होंने स्वीकारा है। किन्तु यह कृति उपन्यास की तरह रोचक भले ही हो किन्तु इसे औपन्यासिक कृति कदापि नहीं स्वीकारा जा सकता। उपन्यास के लिए आवश्यक 'कथावस्तु' तो इसमें नदारद ही है और न ही इसमें पात्रों का वैसा चारित्रिक विकास या उठान है जो किसी कृति को उपन्यास का दर्जा दिलाता है। किन्तु इतना होते हुए भी यह कृति

यात्रावृत्तात्मक फार्म में प्रमुखतः लिखी होने पर भी उपन्यास जैसी रोचक और रम्य अवश्य है। लेखिका ने रोजमर्रा की अमेरिकी जिन्दगी में झांकने की कोशिश में जो मनोरंजक अनुभव सहेजे हैं, उन्हें बिना किसी कोताही के कलमबंद करके पाठकों को परोस दिया है—इससे पाठकों को अमेरिकी जिन्दगी के अन्दरूनी हालातों का विश्वसनीय वर्णन तो पढ़ने को मिल ही जाता है, साथ ही कुछ नया सीखने की प्रेरणा भी मिलती है।

डा. शशिप्रभा शास्त्री की इस पुस्तक में अमेरिका में बसे भारतीयों की जिन्दगी का जायजा भी बखूबी लिया गया है कि किस प्रकार वहां के भारतीयों के बच्चे अपनी भाषा हिन्दी, तमिल आदि को भूल बैठे हैं और कैसे वे धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति और संस्कारों से भी दूर होते जा रहे हैं। अमेरिका के अश्वेतों के साथ बदलते रिश्तों पर लेखिका ने दृष्टिपात किया है। बीच-बीच में लेखिका के अपने ऊपर पड़ते प्रभावों का जो आत्मीय अंकन किया है, उससे पुस्तक में सरसता का संचार भी होता गया है। निश्चय ही यात्रावृत्त शैली में लिखी यह पुस्तक अनोखा ही आस्वाद प्रदान करती है। □

प्रो. विश्वंभर 'अरुण'
3/24, मानपाड़ा, आगरा-282003

खुरदुरी जमीन की कविताएं

इसे स्वीकार ली नदी/कविता संग्रह/पृष्ठ-96, प्रकाशन मगध प्रकाशन, 4649/123ए, न्यू माडर्न शाहदरा, मंडोली रोड, दिल्ली-32, मूल्य : 60 रुपये।

जीवन-पहाड़ की तूलिका से लिखी कविताओं का अद्यतन संकलन है 'इसे स्वीकार लो नदी' जिसे चिड़ियों की भाषा में बोलता कवि जनता रूपी नदी से स्वीकारने का सहज आग्रह करता है। शास्त्राधार का कवच उसके पास नहीं है, न वक्रोक्ति, ध्वनि, अलंकार या अनुप्रास की विडम्बना, उसके पास केवल ठेठ शब्द हैं कहने के, आदमी की जीती बोली है अभिव्यक्ति के लिए।

सुरंजन का कवि खुरदुरी जमीन पर लोटता खुरदुरी जिन्दगी जीता है और यही उसकी नियति है। यही कारण है कि उसकी कविताएं निहायत खुरदुरी हैं।

'इसे स्वीकार लो नदी' का कवि भावुक अवश्य है। वह इस मायने में कि वह जो बाकयात देखता है, झेलता है, वही हू-ब-हू लिखा है। वही फक्कड़ता वही फांकांकशी, वही रोमानियत, सब कुछ वही। कहीं बनावट नहीं, कोई बुनावट नहीं, न ही कोई कहीं सजावट। सीधा सपाट सहज बोलचाल का लेखन। आप शुरू से अंत तक सारी कविताएं पढ़ जाएं, आपको कबीर की सुधक्करी मिल जाएगी। यदि आप साहित्यिक चटखारे वाले मिजाज के हैं तो ये कविताएं बेहद फीकी, उदास और गमगीन दिखेंगी। शायद यही कवि का सच है—जो उसकी सर्जनात्मकता को शास्त्रीय बोझिलता से बचाकर आज की पारिस्थितिकीय सापेक्षता के धरातल पर खड़ा करता है।

इस पुस्तक में सतहत्तर कविताएं हैं जो 'इसे स्वीकार लो नदी' से शुरू होकर 'इसे स्वीकार लो नदी' पर खत्म होती हैं। इस विनम्र विनय से गुजरती कविताएं अनेक भाव-बोध, जिज्ञासा-प्रत्याशा, संकल्प-विकल्प उमंग-उत्ताप, सुख-दुख, समभाव-विषमभाव आदि द्वंद्वों से स्वाभाविक संग्रथित हैं।

यद्यपि इनमें भाषायी खरोंच बहुतायत हैं, लयात्मकता और बिंबात्मक सर्जना की खामोशी है, सम्प्रेषण का सांस्कृतिक निक्षेप भी है, तथापि इनमें आदमी की नब्ज, समाज की धड़कन, भूख, प्यास, वासना, तड़प, उद्वेग, जिजीविषा और सम्मिलन की व्याकुलता है जो शब्द-शब्द में झंकृत होती है। इसी भाव-भूमि पर जन्मी ये कविताएं आम-आदमी की कविताएं बन गई हैं। □

रत्नाकर वर्मा
ई-51/1, चन्द्रलोक कालोनी,
मंडोली रोड, शाहदरा, दिल्ली-110093

पाप

पाप : लेखिका : अलका पाठक : प्रकाशक : आत्माराम एंड संस : मूल्य : 45 रुपये।

अलका पाठक का कहानी संग्रह 'पाप' बदलते हुए मानवीय मूल्यों एवं उनके अन्तर्द्वन्द्व की गाथा है। इस संग्रह की कहानियों में सामाजिक उदासीनता की पृष्ठभूमि में वैयक्तिक ऊहापोह उभर कर सामने आया है। सामाजिक आग्रहों के प्रति निष्क्रियता और व्यक्तिगत हित का सामुदायिक सरोकार पर हावी होना इन कहानियों का कथ्य है।

'एक्सिडेंट' कहानी में "मरना तो उसे है ही, यहां (सड़क पर) मरेगा तो क्लेम अच्छा बनेगा, अस्पताल या घर जाकर मरा तो घर वालों के पैसे जाएंगे।" कथन मनुष्य की भौतिकवादी मानसिकता तथा संवेदनहीनता का परिचायक है। व्यक्तिगत अंतर्द्वन्द्व 'भय' कहानी में बखूबी उभर कर आया है। कहानी के नायक का आदर्शवाद और स्वाभिमान उसकी मजबूरी और जिम्मेदारी के आगे घुटने टेकने पर मजबूर है। अफसर के दुर्व्यवहार के प्रति उसकी खीझ व गुस्सा नपुंसक साबित हो जाता है।

लेखिका की भाषा प्रतीकों और बिम्बों के कारण प्रभावशाली है। 'दुकान' में लड़की की, जिसे देखने कुछ लोग आ रहे हैं, तुलना प्लेट पर रखे मुर्गे से कर सारी कहानी का सार एक ही वाक्य में आ गया है। 'जब' में नायक के आर्थिक, सामाजिक और यहां तक कि मानसिक स्थिति का पता उसकी जेब के अंदर बढ़ती या कम होती

गई चीजों के द्वारा चलता है। अलका पाठक की लेखिनी में व्यंग की एक पैनी धार छिपी है। 'एक्सिडेंट' में आधुनिक समाज की मनःस्थिति पर करारा व्यंग तो है ही, 'कफनखसोट' में इस त्रासदी की ओर इंगित किया गया है कि फटेहाल पात्र को अंत में कफन तक नसीब नहीं होता, जबकि उस पर कहानी लिखकर वाहवाही लूटी जाती है और कुछ पैसा भी बनाया जाता है। 'पाप' में बच्ची की भावना से खेलकर रिकार्ड किए गए कार्यक्रम के लिए सम्मान व प्रसिद्धि मिलने के बाद उसको दिया वादा भूल जाना मानव के दोहरे व्यक्तित्व को दर्शाता है।

चाहे 'आपे-आपे' में अपने बेटे के जीवन के केन्द्र बिन्दु से अजाने में ही खिसक कर परिधि पर आ खड़ी हुई मां की भावनाएं हों या 'सावित्री' में सुहागिन मरने की इच्छा रखने वाली नायिका का अपने बूढ़े पति की दयनीय हालत देख उसके पहले मरने की कामना हो, लेखिका ने मानवीय संवेदनाओं को यहां वहां छुआ है। कुल मिलाकर यह कहानी संग्रह मानवीय सरोकार के लिए पढ़ा जा सकता है। □

बी. सी. खंडूड़ी
152-बी, पाकेट-ए,
मयूर विहार फेज-II, दिल्ली

जलतरंग

पुस्तक का नाम : जलतरंग (कविता); लेखक : उमेश चन्द्र झा 'नील'; प्रकाशक : अग्रवाला प्रेस, झरिया : मूल्य : 8 रुपये।

जलतरंग सैंतीस कविताओं का संकलन कवि की सद्यः प्रकाशित तीसरी कविता पुस्तक है जिसमें विभिन्न भावों को प्रश्रय मिला है किन्तु प्रमुखता प्रेमानुभूति और जीवन की यथार्थता में भोगे हुए क्षणों की अभिव्यक्ति की है। संग्रह में आदि से अंत तक भाव-तारल्य और सहज संवेदना का अविरल प्रवाह फूटता दीख पड़ता है।

कवि अपने आस-पास के घटना चक्रों, परिस्थितियों तथा उनके संघातों का अवलोकन करता है और उन्हें अपनी कल्पनाशीलता की डोरी से गूंथता है। कवि ने जीवन जगत में प्रवहमान भाव लहरियों को यथार्थता के साथ ग्रहण किया है। कल्पना की उड़ान भरने के क्रम में वह धरती की पीड़ा को भी आत्मसात करता चलता है। संकलन की 'पलकों के गांव', 'फूलों वाली', 'शरद की मृदु चांदनी', 'वसंत की मधुयामिनी' आदि भाव प्रवण कविताएं हैं तो 'मजदूरों के गीत', 'जिए जा रहा हूं', 'लकवाग्रस्त कवि' आदि यथार्थबोध तथा वैयक्तिक अनुभूतिपरक रचनाएं हैं जिनमें संघर्ष की कहानी है और है कवि की अदम्य जिजीविषा जो उसे संघर्ष में भी नवजीवन प्रदान करती है। □

प्रो. अवध किशोर प्रसाद
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कोल फील्ड कालेज, भागा, (धनबाद)

हिन्दी के आंचलिक उपन्यास

पुस्तक का नाम : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास; लेखक : डा. मृत्युजय उपाध्याय, प्रकाशक : चित्रलेखा प्रकाशन, 17, अलोपीबाग, इलाहाबाद-211006, (उ. प्र.); पृष्ठ संख्या : 224; मूल्य : 100 रुपये।

'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' शोध प्रबंध है। इसमें हिन्दी के आंचलिक उपन्यास के उद्भव, विकास, शिल्प विधान तथा समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर, अद्यतन उपलब्ध समस्त सामग्री का उपयोग करते हुए, प्रकाश डाला गया है। लेखक की समीक्ष्य दृष्टि सर्वतोभावेन तुलनात्मक रही है।

जब कोई विधा अपने विकास की स्थिति से गुजर रही होती है, तब उसका रूप-निर्धारण और सीमा-निर्धारण कठिन काम होता है (पृष्ठ 11)। फिर भी हिन्दी में आंचलिक उपन्यास से तात्पर्य फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' से लिया जाता है और इसकी परम्परा का प्रारम्भ शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' से मान लिया गया है। समीक्ष्य पुस्तक में लेखक ने इसी मान्यता को स्थापित किया है। विस्तृत भूमिका में आंचलिक उपन्यासों की समीक्षा से संबंधित साक्ष्यों का तथा आंचलिक उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए शिवपूजन सहाय, नागार्जुन से लेकर सुरेन्द्र पाल, राही मासूम रजा के औपन्यासिक अवदान और आंचलिक परिवेश का चित्रांकन किया गया है।

प्रथम अध्याय में जहां आंचलिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है वहीं लेखक ने दूसरे अध्याय में इसका रूपात्मक विश्लेषण कर उपन्यास विधा के सम्पूर्ण ढांचे को कलमबद्ध कर दिया है। आंचलिक उपन्यास के सम्बन्ध में जितना कुछ कहा गया है, वह सब इस प्रबंध में है। □

प्रो. अवध किशोर प्रसाद
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कोल फील्ड कालेज, भागा (धनबाद)

वाल्मीकि के वन और वृक्ष

वाल्मीकि के वन और वृक्ष : लेखक : डा. गिरिजाशंकर त्रिवेदी और डा. सविता भट्ट : प्रकाशक : गीतिका प्रकाशन, 2, घामवाला बाजार, देहरादून : पृष्ठ संख्या : 108 : मूल्य : 50 रुपये।

वृक्ष वस्तुतः हमारी धरा के रक्षा-कवच, जीवनोपयोगी पदार्थों के दाता और मानवता के विकास के आधार हैं, इसे भारत ही नहीं विश्व ने परख लिया है। इसीलिए यत्र-तत्र

योजनाबद्ध रूप में वृक्षों को उगाने तथा उपवनों के संवर्धन के लिए प्रयत्न हो रहे हैं। भारत सरकार ने भी इस बात के लिए वानिकी विभाग की स्थापना की है। यह विभाग वृक्षों-वनों के बचाव, संवर्धन और वृक्षारोपण के लिए कार्यरत है।

अखिल भारतीय वानिकी संस्था इस दिशा में प्रयासरत है। इसी परम्परा में डा. गिरिजाशंकर त्रिवेदी एवं डा. सविता भट्ट के महत्वपूर्ण प्रयास को देखा जाना चाहिए। इन दोनों विद्वान लेखकों की—'वाल्मीकि के वन और वृक्ष' शीर्षक पुस्तक वानिकी चेतना के प्रसार एवं विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। इस पुस्तक में वन, वन-जीवन, वृक्ष, उनका रोपण, वृक्षों में देवत्व भावना और वन देवता जैसे अनेक शीर्षकों से वनों और वृक्षों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए वाल्मीकिकालीन वृक्षों, लताओं और पर्वतों का सप्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। □

डा. राजकिशोर सिंह,
हिन्दी विभाग,
आगरा कालेज, आगरा

तमाशा

तमाशा : लेखक : अशोक चक्रधर : प्रकाशक : डायमण्ड पाकेट बुक्स, 2715, दरियागंज, नई दिल्ली : सम्पादक : गिरिराजशरण अग्रवाल : पृष्ठ संख्या : 176, मूल्य : 15 रुपये।

अशोक चक्रधर जी का यह हास्य व्यंग्य संग्रह फ्रैंड, फिलासफर, गाईड असगर बजाहत को समर्पित है और इसमें दस रचनाएं हैं। मुखपृष्ठ तथा अंतिम पृष्ठ पर बने रेखाचित्र आकृष्ट करते हैं, बीच-बीच में भी दिए गए रेखाचित्र प्रभावी बन पाए हैं। कई रचनाएं स्वयं चक्रधर जी दूरदर्शन पर सुना चुके हैं और सबसे धाकड़ रचना हिन्दू, मुस्लिम खून खराबे पर है—

खून फर्श पर बिखरा पड़ा है, पहचान बताइए,
कौन मलखान, कौन सिंह, कौन खान बताइए!
अभी फौरैंसिक विभाग वाले आएंगे,
जमे हुए खून को नाखून से हटाएंगे, नमूने ले जाएंगे।
इसका ग्रुप 'ओ' इसका 'बी' बतला पाएंगे।
लेकिन यह बताना उनके बस की बात नहीं कि
कौन खून किसका है?
कौम की पहचान बताने वाला, जाति की पहचान बताने वाला
कोई माइक्रोस्कोप है? वे नहीं बता सकते, लेकिन
मुझे तो आपसे होप है।

इसके अलावा गरीबदास का शून्य, बधाई, दुनिया, पागलखाना, साजिश का धुआं, हास्य कविनगर आदि आपको सोचने पर मजबूर कर देंगे। समाज की विसंगतियों को हास्य व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत करना आसान काम नहीं परन्तु अशोक जी ने अपनी लेखनी से पाठक को झकझोर कर रख दिया है।

पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर हिन्दी अंग्रेजी शब्दों का जोड़-तोड़ अच्छा नहीं बन पड़ा है और सारी पुस्तक का मजा किरकिरा कर देता है।

पुस्तक की छपाई सुन्दर, त्रुटिरहित और भाषा सरल है। हल्के-फुल्के साहित्य पढ़ने वालों को यह पुस्तक अवश्य पसन्द आएगी। □

स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ : लेखक : डा. भवान सिंह राणा : प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा.) लि., 2715, दरियागंज, नई दिल्ली : पृष्ठ संख्या : 156, मूल्य : 12 रुपये।

भारत के अमर मनीषी स्वामी रामतीर्थ के जीवनचरित और सिद्धांतों को पाकेट बुक के रूप में प्रस्तुत करके डा. भवान सिंह राणा ने गागर में सागर वाली कहावत को चरितार्थ किया है। आरम्भिक जीवन, तीर्थराम से रामतीर्थ, अमेरिका में, वेदान्त और देश प्रेम और अन्तिम अध्याय 'अनन्त की ओर' सभी प्रेरणादायक हैं।

22 अक्तूबर 1873 को जन्में तीर्थराम जी ही बड़े होकर वर्तमान शताब्दी के महान अध्यात्मिक पुरुष स्वामी राम तीर्थ बने। जापान तथा अमेरिका की यात्रा करके वहां के धनकुबेरों को प्रभावित किया। भारत का यह ज्योतिपुंज अपना अलोक फैला कर केवल तैंतीस वर्ष की अवस्था में बुझ गया। दीपावली के दिन दो महान विभूतियों का तिरोभाव हुआ स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती। सभी वर्ग के आयु के पाठकों के लिए यह प्रेरणादायक पुस्तक संग्रहणीय है। □

प्रेमदीवानी मीरा

प्रेम दीवानी मीरा : सम्पादक : गिरिराजशरण अग्रवाल : प्रकाशक : डायमण्ड पाकेट बुक्स, 2715, दरियागंज, नई दिल्ली : पृष्ठ संख्या : 134, मूल्य : 12 रुपये।

प्रेम दीवानी मीरा (भारत के संत कवि सीरिज) का मुखपृष्ठ मीरां देखकर अचरज हुआ क्योंकि कहीं भी इसका प्रयोग नहीं देखा गया है। अन्दर के पृष्ठों पर भी 'मीरां' पढ़ने को मिला। हो सकता है सम्पादक महोदय ने शोध की हो, परन्तु इसकी चर्चा उन्होंने कहीं नहीं की।

प्रस्तुत पुस्तक के पहले 25 पृष्ठों में जीवनी का वर्णन विस्तार से किया गया है कि कैसे विरक्ति भाव उत्पन्न हुआ। राजकीय मर्यादाओं को भंग करके मीरा जिस प्रकार साधु संतों से सतसंग करती थी यह असहनीय था। अगले पृष्ठों पर मीरा के पद अर्थ सहित आमने-सामने पाठकों को समझने में मदद करते हैं। अपने मधुर गीतों में अपनी प्रेम पीड़ा का मादक रस घोल दिया है परन्तु

उन्होंने स्वयं को कवियत्री सिद्ध करने के लिए कुछ नहीं गाया। जीवन गाथा और गीत पढ़ने वालों को बहुत कुछ मिलेगा। □

1990 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएं

1990 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएं: प्रकाशक: डायमण्ड पाकेट बुक्स, 2715, दरियागंज, नई दिल्ली: सम्पादक: डा. गिरिराजशरण अग्रवाल: पृष्ठ संख्या: 170, मूल्य: 15 रुपये।

डा. गिरिराज शरण अग्रवाल पिछले सात वर्षों से हास्य व्यंग्य रचनाओं का संग्रह छापते आ रहे हैं और इसी श्रृंखला में उनका यह नया प्रयास है। इस पुस्तक में दो खण्ड हैं एक गद्य एवं दूसरा पद्य। अनेक जाने माने रचनाकारों की श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन पाठकों को विभिन्न रूचियों का ध्यान रख कर किया गया है। गद्य खंड में नामी-गरामी लेखकों के अलावा नए लेखकों को भी स्थान दिया गया है जो सराहनीय है। रचनाओं के शीर्षक 'जब भोलाराम ने पंप लगाया', 'सदाचारी पीढ़ी का संकल्प', 'उधा मोई पिच बिसरत नाहीं' तथा 'चतुरानन साहब की कथा' आदि के अलावा 'डिब्बा जनाना बन्द है', 'रेल में सांप', 'कुर्सी डिमांड', 'राधा तत्व चिंतामणि', 'कटपीस', 'बोफर्स के रंग आपको आनंदित कर देंगे। सभी लेखकों के पते आपकी सुविधा के लिए साथ दिए गए हैं। □

रमेश चन्द्र कुमार
सी-5/14, केशवपुरम, लारेंस रोड,
दिल्ली-110035

प्राप्ति स्वीकार

प्रश्न एक पुरस्कार का: लेखक: श्रीनिवास वत्स: प्रकाशक: सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6: मूल्य: 50 रुपये।

इन्दिरा-दर्शन: लेखक: शारदा प्रसाद शर्मा 'शारदेन्दु': प्रकाशक: लॉ टाइम्स प्रेस,56 सी, सिंगार नगर, लखनऊ-5, मूल्य: 12 रुपये।

वाणी के बोल: लेखक: शारदा प्रसाद शर्मा 'शारदेन्दु': प्रकाशक: स्वयं, 559क/19 ग, बहादुर खेड़ा, सिंगार नगर, लखनऊ: मूल्य: 15 रुपये।

भारत दर्पण: लेखक एवं प्रकाशक: शारदा प्रसाद शर्मा 'शारदेन्दु', 559क/19 ग, बहादुर खेड़ा, सिंगार नगर, लखनऊ: मूल्य: 25 रुपये।

दासता और मुक्ति: लेखक एवं प्रकाशक: शारदा प्रसाद शर्मा 'शारदेन्दु', 559क/19 ग, बहादुर खेड़ा, सिंगार नगर, लखनऊ: मूल्य: 20 रुपये।

चिंतन: लेखक: कालीचरण गौतम: प्रकाशक: यशोधरा प्रकाशन, 1720/57, नाई वाला, करोल बाग, नई दिल्ली-5: मूल्य: 30 रुपये।

कौमी एकता की तलाश: सम्पादक: शिवरतन थानवी: प्रकाशक: चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर: मूल्य: 9 रुपये 20पैसे।

नूतन हस्ताक्षर: संपादक: भारतेन्दु मिश्र: प्रकाशक: परिधि प्रकाशन, मूल्य: 25 रुपये।

बीसवीं शताब्दी (साजिल्द काव्य संकलन): संपादक: डा. भवदेव पाण्डेय एवं भवेश चन्द्र जायसवाल: प्रकाशक: हीरोज क्लब, कैम्प मिशन कंपाउंड, मीरजापुर उ. प्र.: मूल्य: 75 रुपये।

गंगा और उसका पर्यावरण: लेखक: डा. चन्द्रशेखर आजाद: प्रकाशक: तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अंसारी रोड, नई दिल्ली-2, मूल्य: 90 रुपये।

मां (कविता संग्रह): रचनाकार: किशोरी शरण शर्मा: प्रकाशक: मनोरथ प्रकाशन,7—दुर्विजय गंज सराय फाटक, लखनऊ-226004: मूल्य: 20 रुपये।

बस एके राह: लेखक: केदार अजेय: प्रकाशक: नवसंगम परिवार, कंकड़बाग, पटना-20: पृष्ठ संख्या:56, मूल्य: 5 रुपये।

रोचक ऐतिहासिक कहानियां: लेखक: केदारनाथ कोमल: प्रकाशक: प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली: मूल्य: 8 रुपये।

देश-विदेश के महापुरुष: लेखक: अक्षय कुमार जैन: प्रकाशक: प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली: पृष्ठ संख्या: 86, मूल्य: 15 रुपये।

अणुव्रती—तापस: अमन जी: संपादक: क्षेमचंद्र सुमन: प्रकाशक: अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, नई दिल्ली: पृ. सं.: 324 : मूल्य: 50 रुपये।

इतिसिद्धम (उपन्यास): लेखक: कृष्ण सुकुमार: प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, दिल्ली: मूल्य: 30 रुपये।

दरकते कगार: लेखक: दुर्गा हाकरे: प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, दिल्ली: मूल्य: 30 रुपये।

तलाश एक सूरज की (काव्य संग्रह): कवि: मुनि रूपचंद्र: प्रकाशक: मानव मंदिर प्रकाशन, हिसार: पृष्ठ: 98: मूल्य: 20 रुपये।

प्रकाश-पथ (राजस्थानी अनुवादमय काव्य कुरान का): अनुवाद: इकराम राजस्थानी: प्रकाशक: श्रीमती जमीला राजस्थानी, बावड़ी गेट, पोस्ट—चौमू, जिला-जयपुर: पृष्ठ: 112: मूल्य: 40 रुपये।

सपन राग: लेखक: राकेश वत्स: प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-2: पृष्ठ संख्या: 233: मूल्य: 40 रुपये।



साहित्यकारों और पत्रकारों का सम्मान

अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली शाखा ने गत 24 जून को अपने रजत जयन्ती समारोह में विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों और पत्रकारों को अलंकरणों से सम्मानित किया। इस भव्य समारोह के अवसर पर भारत के उपराष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा ने उपराष्ट्रपति भवन में साहित्यकारों को अलंकरण प्रदान करते हुए इस प्रकार सम्बोधित किया।

''विभिन्न भाषाओं के साहित्यकार परस्पर मिलकर और अपने सृजन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता और सद्भाव के द्वारा देश को न केवल टूटने से रोक सकते हैं, बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से विश्व बन्धुत्व की भावना का समुचित विकास कर विश्व शांति के संदर्भ में एक प्रभावी भूमिका भी निभा सकते हैं।''

डा. शर्मा ने तमिल, कन्नड़, बंगला और हिन्दी के अनेक कवियों के उदाहरण देते हुए राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उनकी प्रभावी भूमिका पर भी प्रकाश डाला। सम्मेलन के 'भारत भाषा भूषण', 'साहित्य श्री' तथा 'संवाद श्री' मानद अलंकरणों से सम्मानित किए जाने वाले साहित्यकारों में सर्वश्री डा. विजयेन्द्र 'स्नातक', रमाप्रसन्ना नायक, डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी, डा. राम कुमार चतुर्वेदी 'चंचल', प्रो मधुप पांडेय, प्रो. ए. एस. उरवलकर, रमाशंकर लाल सक्सेना, प्रमुख हैं। 'संवाद श्री' सम्मानित किए जाने वाले पत्रकारों/साहित्यकारों में सर्वश्री डा. विश्वमित्र उपाध्याय, ए. आ. विग, अनिल नरेन्द्र, अशोक रिछारिया, सुरेश नीरव, सतीश त्रिपाठी तथा सुरेश भारद्वाज उल्लेखनीय हैं। इस शुभ अवसर पर बहुत बड़ी संख्या में राजधानी और बाहर के साहित्यकार एवं पत्रकार उपस्थित थे।

इससे पहले 22 जून को इसी रजत जयन्ती के अवसर पर एक बहुभाषी कवि सम्मेलन भी हुआ। जिसका उद्घाटन डा. नजमा हेपतुल्ला (उप सभापति राज्यसभा) ने किया। श्री सतीश चतुर्वेदी (महासचिव अ. भा. भा. सा. स.) संयोजक थे। इसका कुशलतापूर्वक संचालन कवि-पत्रकार सुरेश नीरव ने किया। इस प्रकार यह समारोह संपन्न हुआ। □

मोहन चन्द्र मंटन
बी. डी. 997, सरोजिनी नगर,
नई दिल्ली-110023

वार्तायन

दस्तावेज का 50वां अंक

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के मण्डी हाउस, नई दिल्ली स्थित प्रेक्षागृह में गत 6 जुलाई को हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डा. नामवर सिंह ने डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के चौथे काव्य संकलन 'आखर अनन्त' का तथा वरिष्ठ कथाकार श्री मनोहर श्याम जोशी ने गोरखपुर से निकलने वाली विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका 'दस्तावेज' के 50वें अंक का लोकार्पण किया।

बिहार विश्वविद्यालय के डा. रेवती रमण ने विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविताओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि उनकी कविताएं एक ओर मानव विरोध स्थितियों और विनाशकारी आतंकवाद के विरुद्ध समता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत काव्य पुरुष को चित्रित करने वाली, विपक्ष धर्मिता को काव्यात्मक अनुभूति देने वाली कविताएं हैं तो दूसरी ओर बेहतर दुनिया के सपने देखने वाली प्रेम और प्रकृति की अत्यन्त संवेदनशील कविताएं हैं। ये विचार और अनुभूति के संतुलन वाली हिन्दी की जातीय परम्परा की कविताएं हैं जो अपने सृजनात्मक दायित्व को स्वीकार करती हैं। इन कविताओं में संघर्षशील मनुष्य का अकेलापन और अकेले मनुष्य की संघर्षशीलता देखी जा सकती है।

डा. अरविन्द त्रिपाठी ने हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता, उसकी कठिनाइयों, संघर्षों और सीमाओं की चर्चा करते हुए दस्तावेज के महत्वपूर्ण विशेषांकों और उसके द्वारा नई रचनाशीलता के प्रोत्साहन का उल्लेख किया तथा ऐसी राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका के लिए एक वैचारिक खुलेपन को जरूरी बताया।

डा. चितरंजन मिश्र ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को उदृत करते हुए कहा कि संतुलन की दृष्टि सत्यान्वेषी की दृष्टि होती है और वही दस्तावेज की दृष्टि है। आपने कहा कि एक ही पत्रिका से सभी तरह की अपेक्षाएं नहीं की जा सकतीं।

वरिष्ठ कथाकार और पत्रकार श्री मनोहर श्याम जोशी ने साहित्यिक पत्रिका की कठिनाइयों और उनकी क्षणभंगुरता का जिक्र करते हुए 'दस्तावेज' की लम्बी विकास यात्रा और उसकी उपलब्धियों को महत्वपूर्ण बताया। उन्होंने आज की पत्रिकाओं की उबाऊ एकरसता और रूढ़िबद्धता की आलोचना करते हुए इस पत्रिका के आग्रहमुक्त स्टैण्ड की प्रशंसा की तथा इसे हिन्दी पत्रकारिता में एक आश्वस्त करने वाला योगदान बताया।

प्रसिद्ध आलोचक डा. नामवर सिंह ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा, ''आज जबकि एक ही कांट-छांट और एक ही ढर्रे की चालू मुहावरे वाली कविताएं ज्यादा लिखी जा रही हैं, विश्वनाथ

प्रसाद तिवारी की कविताओं को पढ़कर प्रीतिकर आश्चर्य होता है। विश्वनाथ जी की कविताएं मनुष्य की सहज, सच्ची वाणी को अभिव्यक्ति देती हैं। 'मां' के बारे में लिखी गई इनकी कविताएं अत्यंत मर्मस्पर्शी कविताएं हैं। इनकी कविताओं में लोक शब्दावली और लोक धुनों का तो महत्वपूर्ण प्रयोग हुआ ही है, आज के जीवन की विडंबना का भी सफल चित्रण हुआ है।" आगे डा. नामवर सिंह ने कहा, "दस्तावेज हिन्दी पत्रकारिता की उस कड़ी में है जिसमें संस्थानों से पत्रिकाएं नहीं निकाली जातीं बल्कि सम्पादक अपने खून-पसीने से पत्रिका निकालते थे। पूरब के लोगों में एक अड़ियल दृढ़ता (टेनेसिटी) होती है। इसी दृढ़ता के कारण 'दस्तावेज' निरन्तर निकलता जा रहा है और निकलता रहेगा।"

इस अवसर पर अनेक साहित्यकार और पत्रकार उपस्थित थे। □

राजेन्द्र रंजन
दस्तावेज, गोरखपुर, (उत्तर प्रदेश)



कवि सम्मेलन

हिन्दी हितकारिणी समिति सकलडीहा-वाराणसी के तत्वावधान में गत 22 जून को सकलडीहा रेलवे स्टेशन के प्रांगण में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। संयोजक थे साहित्यकार श्री वेद प्रकाश पाण्डेय। कवि सम्मेलन का दीप प्रज्वलित करते हुए जगतपुर महाविद्यालय वाराणसी के प्रधानाचार्य डा. जवाहर लाल सिंह ने कहा कि कविता ही मानव के अन्तःमन को प्रभावित करने वाली संजीवनी है। इसलिए आज गांव-गांव में इसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

कवि सम्मेलन की अध्यक्षता बाबू नन्द किशोर सिंह ने की। संचालन डा. हरीश सिंह ने किया। प्रतिष्ठित कवि पंडित हरिराम द्विवेदी, डा. अशोक सिंह, जयप्रकाश बागी, भरतलाल गुप्त, हरिवंश पाठक, 'गुमनाम' तथा वेद प्रकाश पाण्डेय ने अपनी सशक्त रचनाओं के माध्यम से काव्य प्रेमियों के मन पर एक अमिट छाप छोड़ी। □

ज्ञान प्रकाश पाण्डेय
पत्रकारिता एवं संचार विभाग
जगतपुर महाविद्यालय,
वाराणसी (उ. प्र.)



देश को जोड़ने की सशक्त कड़ी है हिन्दी

इलाहाबाद। हिन्दी भाषा देश को जोड़ने वाली एक सशक्त कड़ी रही है। जब से हिन्दी का क्षेत्र संकुचित होने लगा है तब से देश की एकता की कड़ी भी शिथिल पड़ने लगी है।

ये विचार वरिष्ठ साहित्यकार पंडित ठाकुर दत्त मिश्र की 90वीं जयंती पर आयोजित समारोह में भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष डा. मुरली मनोहर जोशी ने व्यक्त किए।

उन्होंने कहा कि हिन्दी के विशद प्रचार-प्रसार तथा भव्य प्रसाद की नींव डालने वाले पंडित ठाकुर दत्त मिश्र जैसे पुरोधा साहित्य-शिल्पियों के जीवन दर्शन से प्रेरणा और शिक्षा लेने की जरूरत है।

समारोह के विशिष्ट वक्ता एवं हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष प्रो. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने कहा कि मिश्र जी आचार्य द्विवेदी की परम्परा से जुड़े रहे। वे हिन्दी के परम भक्त और सेवी रहे हैं। हिन्दी को समृद्ध करने में जो योगदान उन्होंने दिया है उसे भुलाया नहीं जा सकता।

पंडित ठाकुर दत्त मिश्र ने कहा कि मैं आचार्य द्विवेदी, बक्शी जी व पंडित देवीदत्त शुक्ल के सरस्वती सम्पादन का साक्षी रहा हूं। किन्तु आज हिन्दी और भारतीय संस्कृति पर आए संकटों को देख कर अत्यंत द्रवित हो उठता हूं।'

समारोह के अध्यक्ष श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी ने कहा कि ऐसे साहित्यिक समारोहों की कल्पना केवल प्रयाग एवं काशीवासियों में ही की जा सकती है।

अंत में समारोह के संयोजक, चण्डी व 'संपादक की वाणी' के सम्पादक पंडित रमा दत्त शुक्ल ने द्वितजनों एवं आगतजनों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए मिश्र जी के दीर्घायुष्य की कामना की।

इस अवसर पर 'सम्पादक की वाणी' के अभिनन्दन अंक का लोकार्पण डा. मुरली मनोहर जोशी ने किया। □

व्रतशील शर्मा
190 एफ, अलोपीबाग,
प्रयाग-6 (उ. प्र.)

यह नाटक नहीं है



पटना का साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संचेतना का समर्थ मंच 'गतिविधि' ने कुछ ही वर्षों में अनेक नाटकों का सफल मंचन करके, इस क्षेत्र में अच्छी ख्याति अर्जित कर ली है। यह नाटक सत्रह बार मंच पर प्रदर्शित हो चुका है।

श्री विनोदचन्द्र द्वारा लिखित एवं निर्देशित 'यह नाटक नहीं है' में वर्तमान सियासत पर एक तीखा-पैना व्यंग्य है। देश की नई पीढ़ी बेरोजगारी, राजनीति का विकृत रूप, समाज की विसंगतियां और बढ़ती हुई हिंसा तथा अपराधीकरण की प्रवृत्ति से आक्रांत है।

प्रस्तुत नाटक में सभी कलाकारों की भूमिका पात्र के अनुसार सराहनीय रही है। संगीत-संयोजन, रूप-सज्जा, ध्वनि संयोजन, मंच संचालन तथा उद्घोषणा का निर्वाहन ठीक था। सब मिलाकर 'गतिविधि' की यह प्रस्तुति सराहनीय है। □

सुनील कुमार
द्वारा श्री नारायण भक्त गली हरिमंदिर,
पटना सिटी-800008

(पृष्ठ 13 का शेष)

घाटी और धौलाधार की बर्फ लदी पहाड़ियों की साक्षी में गुजरी हैं। गुजरी क्या—शाश्वत हो गई हैं।

दुनिया में स्मृति से अधिक शाश्वत और पवित्र कोई सम्पत्ति नहीं है। फिर यह स्मृति यहां प्रकृति के हाथों में सुरक्षित है। सभ्यता का घुन अब यहां भी लग गया है। फिर भी हमारे रहते प्रकृति उन स्मृतियों को अपने में संजोए रहेगी।

मैं थोड़ा कुरेदने के ख्याल से पूछता हूं कि इस स्मृति के कई-कई रंग होंगे क्योंकि तुम्हारी किशोरावस्था और युवावस्था यहीं अधिकांश व्यतीत हुई हैं। यहां आसपास छोटे-छोटे गांव भी हैं जहां लोग तुम्हारे पिता को भी जानते हैं, उनकी प्रतिष्ठा के कारण तुम्हें रास्ता चलते भी झुककर प्रणाम करते हैं।... तो इस स्मृति में प्रेम और रोमांस के क्षण भी कई शामिल होंगे?

मेरे प्रश्न पर बल्लभ फिर वही मासूम, बेबाक-सी हंसी छलका देता है। इस हंसी में प्रेम और स्मृतियों के कई रंग ही नहीं, सुगंध और स्निग्धता भी सहज देखी जा सकती है।

धर्मशाला, भागसूनाग मंदिर के साथ सटा हुआ दो-तल्ला घर, बल्लभ के पिता ने जिसे खासतौर पर अपने लिए बनवाया और अंत में आश्रम को दान कर दिया। बल्लभ जब भी इधर आता है, उसी मकान में ठहरता है। एक दिन मुझे साथ लेकर वह आसपास घरों में मिलने जाता है। कच्चे-पक्के घर... कहीं-कहीं गाय, भेड़-बकरियां भी बंधी हैं। अधिकांश व्यवसाय खेती और स्लेट-खदानों पर निर्भर है। दिन का समय...घर में प्रायः बच्चे और हर उम्र की स्त्रियां ही नजर आती हैं। बल्लभ को देखते ही सबके चेहरों पर मुस्कान फूट पड़ती है। स्त्रियां बल्लभ से पूछती हैं, "कब आए पंडित जी?"... वे सिर को चुन्नी से ढककर बल्लभ के पैरों में सिर रखती हैं। वह पीछे हटता "न न" कहता है। पर वे कहां मानने वाली हैं। उन्हें हर प्रकार की विघ्न-बाधाओं से निजात दिलाने वाले, छोटी-बड़ी बीमारी, व्यथा-पीड़ा की दवा देने वाले पंडित देवराम ज्योतिषाचार्य के सुपुत्र हैं—बल्लभ डोभाल। पिता के प्रताप के वारिस हैं छोटे पंडित जी।

बल्लभ पांच-दस मिनट रुक कर, घर के लोगों की कुशल-क्षेम पूछ आगे बढ़ जाता है। फल कहां गया?...अमुक का विवाह हो गया या नहीं?...उसके कितने बच्चे हैं? आदि, सामान्य प्रश्नों द्वारा अपनापन बांटता, समेटता टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर चढ़ता, अपनी लम्बी टांगों से बड़े-बड़े डग भरता हुआ सारा गांव घूम जाता है। मैं हर बार हांफता पिछड़ जाता हूं। "दूध पियो पंडित जी, छाछ पियो...चाय पियो।" ग्रामीण कुछ न कुछ पंडित जी को खिलापिला कर ही संतुष्ट हैं। परन्तु पंडित जी "हां...हूं" करते, फिर आऊंगा, कहते हुए आगे बढ़ जाते हैं।

"अभी हो न यहां?..."

"हां, पन्द्रह-बीस दिन रुकूंगा।"

फिर आगे कोई बूढ़ा मिल गया तो उसके पास बैठ चिलम पर दो-चार सुट्टे खींच ताजा दम हुए। आगे कोई हिप्पी ठहरे हुए दिखाई दिए। कई वर्षों से इन्हीं गांवों में मतवातिर आने वाले भारतीय हिप्पी, विदेशियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते दिखाई दे जाते हैं। अपने आंगन में बैठा हिप्पी-दम्पत्ति...बल्लभ को देख सुलफे की चिलम तैयार करने लगता है। फिर दोनों चिलम खींचते हैं। महिला भी आकर उनका साथ देती है।

मैं यह सब देखता हुआ पुनः याद करता हूं बल्लभ की कहानियों को...जहां किसी न किसी रूप में उसका भोगा हुआ यथार्थ ही सामने आता है। उसकी कहानियों के जरिए उसे समझा जा सकता है, अन्यथा वह एक साधारण-संकोची व्यक्ति ही आपको नजर आएगा जो या तो शिमला के माल पर भांग की पत्तियों को हथेली के ऊपर सुखाता हुआ मिलेगा...या पहाड़ों, जंगलों अथवा गांव-घरों के आसपास अपने में खोया-खोया दिखाई दे जाएगा। □



केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की रजत जयंती

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का रजत जयंती कार्यक्रम समापन समारोह पिछले दिनों नई दिल्ली के फिक्की सभागार में सम्पन्न हुआ। समारोह के मुख्य अतिथि उपराष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा थे। अध्यक्षता केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल के उपाध्यक्ष एवं सांसद डा. शंकर दयाल सिंह ने की। कार्यक्रम का शुभारंभ संस्थान के नागा-मिजो छात्र-छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सरस्वती वंदना से हुआ।

उपराष्ट्रपति ने इस अवसर पर प्रकाशित रजत जयंती वर्ष ग्रंथ का लोकार्पण किया। केन्द्रीय हिंदी संस्थान के प्रोफेसर डा. माणिक गोविंद चतुर्वेदी ने रजत जयंती वर्ष का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए संस्थान के रजत जयंती वर्ष के विभिन्न कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला।

डा. शंकर दयाल शर्मा ने 'अखिल भारतीय हिन्दी सम्मान योजना' के अंतर्गत दस हिन्दी सेवी विद्वानों को दस हजार रुपये की राशि, प्रशस्ति पत्र एवं शाल से सम्मानित एवं पुरस्कृत किया। वर्ष 90-91 का गंगाशरण सिंह पुरस्कार प्रो. राम लाल पारिख (गुजरात), कु. शांताबाई (कर्नाटक), डा. बी. बी. कुमार (नगालैंड) और एस. चंद्रमौलि (तमिलनाडु) को दिया गया। यह पुरस्कार हिन्दी के प्रचार-प्रसार और प्रशिक्षण में विशिष्ट योगदान करने के लिए दिया जाता है। गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार स्व. युद्धवीर (आंध्र प्रदेश) और श्री पारसनाथ सिंह (उ. प्र.) को मिला। यह पुरस्कार हिन्दी पत्रकारिता तथा रचनात्मक साहित्य में उल्लेखनीय काम के लिए दिया जाता है। 90 का सुब्रह्मण्यम भारती पुरस्कार स्व. आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा और डा. रमानाथ सहाय को मिला। यह पुरस्कार हिन्दी भाषा के क्षेत्र में सर्जनात्मक एवं शोधपरक अवदान एवं अन्य विकासात्मक सेवाओं के लिए दिया जाता है। आत्माराम पुरस्कार प्रो. डी. एस. कोठारी और स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती को मिला। इन्हें विज्ञान तकनीकी साहित्य और उपकरण विकास के क्षेत्र में सराहनीय काम के लिए सम्मानित किया गया। इस अवसर पर इन उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त संस्थान के वरिष्ठ पूर्व पदाधिकारियों, प्राध्यापकों एवं कर्मचारियों को भी सम्मानित किया गया।

इस अवसर पर डा. शंकर दयाल शर्मा ने कहा कि यह प्रसन्नता की बात है कि 25 वर्ष पूर्व स्थापित यह केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उत्तरपूर्वी तथा दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार-प्रसार में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। उन्होंने कहा कि इस संस्थान ने अहिंदी क्षेत्रों के भाषा सर्वेक्षण का जो काम किया है तथा उन भाषाओं के साथ हिन्दी का जो तुलनात्मक अध्ययन किया है उन्हें मैं अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूं क्योंकि इससे उन कठिनाइयों को समझकर उनका हल ढूंढा जा सकेगा जो हिन्दी सिखाने-सीखने के दौरान आती हैं। □

डा. देवेन्द्र शुक्ल
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
अरविन्द आश्रम, अरविन्द मार्ग,
नई दिल्ली-110016

हिन्दी प्रचार राष्ट्रीयता का ही प्रचार है

"हिन्दी के प्रचार-प्रसार में तथा देश की एकता एवं अखण्डता की रक्षा में देश की स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। देश आजाद होने के बहुत पहले से ही ये संस्थाएं हिन्दी के माध्यम से देश की महत्वपूर्ण सेवा कर रही हैं। वास्तव में हिन्दी प्रचार के पुनीत यज्ञ में हिन्दी सेवियों को अपनी आहुति देनी है। हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रचार ही है।"

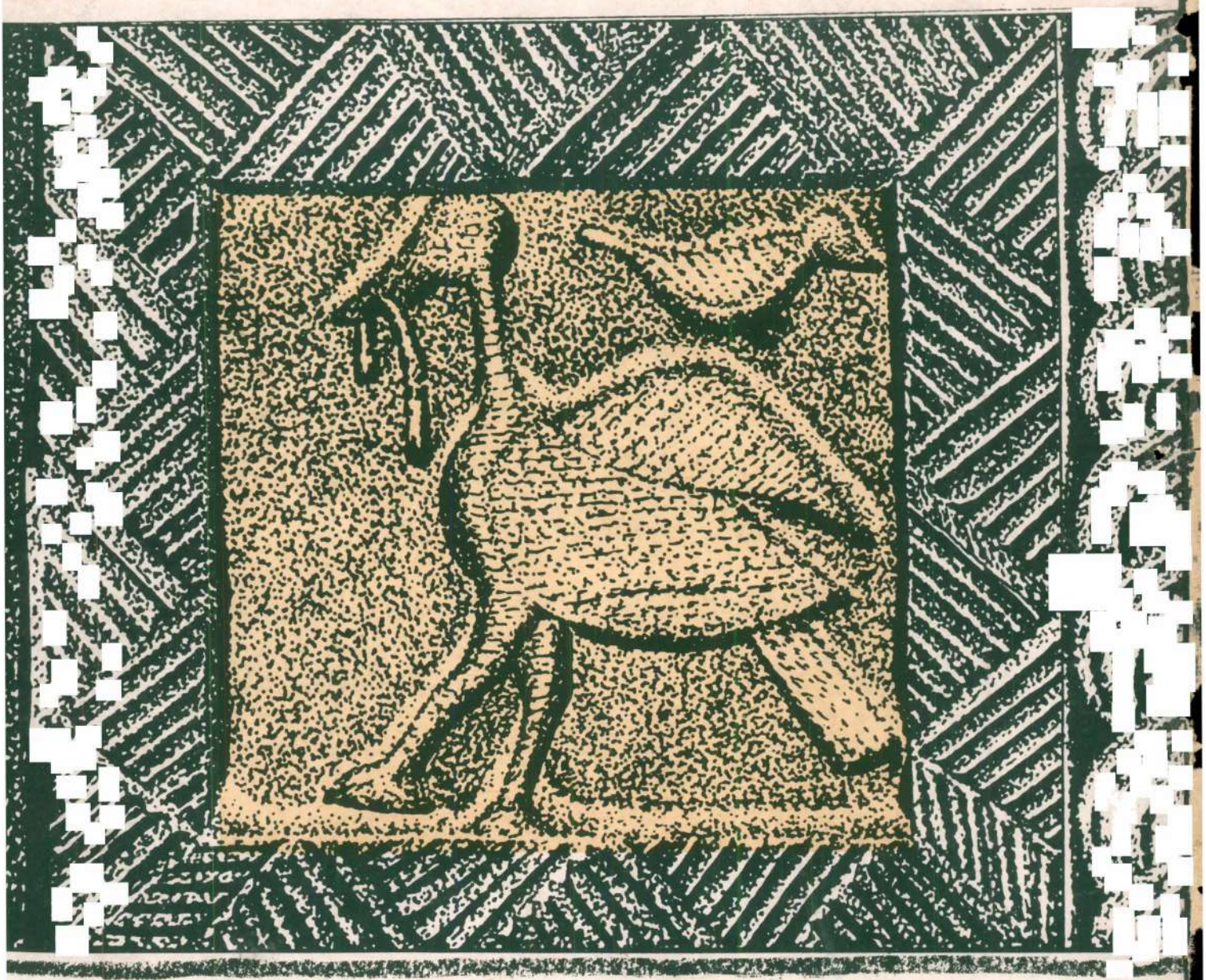
ये उद्‌गार भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय–शिक्षा विभाग के उपमंत्री श्री पी. के. सेठ ने गत 26 जून को हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद द्वारा आयोजित समारोह में व्यक्त किए। उच्च शिक्षा-शोध संस्थान के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने समारोह की अध्यक्षता की।

प्रो. गोस्वामी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात पर बल दिया है कि विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसके लिए हिन्दी विभागों को स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। इससे हिन्दी के प्रचार में तेजी और मजबूती आ सकती है। दोनों एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करें–यह समय की पुकार है।

श्री सेठ ने हिन्दी संस्थाओं को यह सलाह दी कि शिक्षण के क्षेत्र में आज जो नए-नए विषय, प्रशिक्षण, तकनीक एवं प्रयोग विधियां आ रही हैं, उनसे हिन्दी संस्थाओं को भी लाभ उठाना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों से हिन्दी संस्थाओं का गहरा सम्बन्ध हो और परस्पर आदान-प्रदान की प्रक्रिया जारी रहे। □

डा. शीलम् वेंकटेश्वर राव
सम्पादक–विवरण-पत्रिका,
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद।

डाक तार पंजीयन सं. डी. (डी. एन.) 105 बिना पूर्व भुगतान के एन. डी. पी. एस. ओ., नई दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस
यू (डी. एन.)-49 प्राप्त दिल्ली डाक आर. एन. 701/57
P. & T. Regd. No. D (DN)/105 Delhi Postal
Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi R.N. 701/57



डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित